कर्मसाहित्ये निष्णाताः प्रेरका मार्गदर्शकाः संशोधकाश्च
सिद्धान्तमहोदधय आचार्य भगवन्तः (ग्रन्थ ३८)

श्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वराः

मणिवर्य श्रीवीरशेखरविजयसूत्रिता

स्वोपज्ञ–

प्रेमप्रभावृत्तिपरिकलिता

भवस्थितिः (१)

दशपरिशिष्टपरिवृता

भारतीय प्राच्यतत्व प्रकाशन समिति पिंडवाडा

॥ श्रीशङ्खेश्वरपार्श्वनाथाय नमः ।

॥ श्री आत्म-कमल-वीर-दान-प्रेम-हीरसूरीश्वरसद्गुरुभ्यो नमः ।

भारतीय प्राच्य तत्त्व प्रकाशन समिति पिंडवाडा संचालितायां

आचार्यदेवश्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वरकर्मसाहित्यजैनग्रन्थमालायां

अष्टात्रिंशो (३८) ग्रन्थः

कर्मसाहित्ये निष्णाताः प्रेरका मार्गदर्शकाः संशोधकाश्च

सिद्धान्तमहोदधय आचार्यभगवन्तः

श्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वराः

卐

गणिवर्यश्रीवीरशेखरविजयसूत्रिता

स्वोपज्ञ-

प्रेमप्रभावृत्तिपरिकलिता

भवस्थितिः (१)

दशपरिशिष्टपरिवृता

प्रकाशिका—भारतीय-प्राच्य-तत्त्व-प्रकाशन-समिति, पिण्डवाडा ।

प्रथम आवृत्तिः प्रति ५००	राजसंस्करण–७) रु०	वीर संवत् २५१३ विक्रम संवत् २०४३

* प्राप्तिस्थान *

भारतीय-प्राच्यतत्त्व-प्रकाशन-समिति
C/o रमणलाल लालचंद शाह
१३५/१३७ झवेरी बाजार, बम्बई २

•

भारतीय-प्राच्यतत्त्व-प्रकाशन-समिति
C/o शा. समरथमल रायचंदजी
पिंडवाड़ा (राज०)
स्टे. सिरोही रोड (W. R.)

•

भारतीय-प्राच्यतत्त्व-प्रकाशन-समिति
शा. रमणलाल वजेचन्द,
C/o दिलीपकुमार रमणलाल
मस्कती मार्केट,
अहमदाबाद २.

•

मुद्रक—
ज्ञानोदय प्रिंटिंग प्रेस, पिंडवाडा
स्टे.-सिरोहीरोड (W. R.)

मूलग्रन्थकृद् वृत्तिग्रन्थकृत्सम्पादकश्च

卐

प्रवचनकौशल्याधार-सिद्धान्तमहोदधि-सुविशालगच्छाधिपति-
परमशासनप्रभावक-कर्मसाहित्यनिष्णात-परमपूज्य-स्वर्गता-
ऽऽचार्यदेवेशश्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वरविनीताऽन्तेवासि-
निःस्पृहशिरोमणि-गीतार्थमूर्धन्य-परम-पूज्या-ऽऽ
चार्यदेव-श्रीमद्विजयहीरसूरीश्वरशिष्य
गणिवर्यश्रीललितशेखरविजयशिष्य-
गणिवर्यश्रीराजशेखरविजय-
शिष्यः

गणिवर्यश्रीवीरशेखरविजयः

First Edition copies 500 | DELUXE EDITION RS. 7 | A.D. 1987

1. Bharatiya Prachya Tattva Prakashana Samiti,
C/o. Shah Ramanlal Lalchand,
135/137 Zaveri Bazzar
BOMBAY - 400 002
(INDIA)

2. Bharatiya Prachya Tattva Prakashana Samiti
C/o. Shah Samarathmal Raychandji,
PINDWARA, 307022 (Raj.)
(INDIA)

3. Bharatiya Prachya Tattva Prakashana Samiti
Shah Ramanlal Vajechand,
C/o Dilipkumar Ramanlal,
Maskati Market,
AHMEDABAD-380002
(INDIA)

Printed by :-
Gyanodaya Printing Press
PINDWARA. (Raj.)
St. Sirohi Road, (W.R.)
(INDIA)

Acharyadeva-Shrimad-Vijaya-Premasurishwarji
Karma-Sahitya-Granthmala

GRANTH NO. 38

BHAVASTHITIHI [I]

Along With PREMA PRABHA Vrutti

WITH TEN APPENDICES

By

GANIVARYA SHRI

VEERSHEKHAR VIJAYA MAHARAJA

卐

Inspired and Guided by

His Holiness Acharya Shrimad Vijaya

PREMASURISHWARJI MAHARAJA

the leading authority of the day

on Karma Philosophy.

Published by–

Bharatiya Prachya Tattva

Prakashana Samiti, Pindwara (INDIA)

❀ प्रकाशकीय निवेदन ❀

हमें यह निवेदन करते हुए अपरिमित हर्ष की अनुभूति हो रही है कि सन् १९६६ में अहमदाबाद में हमारी भारतीय प्राच्य-तत्त्व प्रकाशन समिति द्वारा सर्व प्रथम तत्प्रकाशित कर्म साहित्य के आद्य दो ग्रन्थरत्नों का विशाल कुंकुमपत्रिका, अनेकविध पत्रिकाओं और पुस्तिकाओं आदि के द्वारा अत्यन्त विराट्काय एवं भव्य समारोह में विमोचन किया गया था। उस अवसर पर दोनों ग्रन्थरत्नों को गजराज पर विराजमान कर, विराट मानव समुदाय के साथ, अनेकानेक साजों से अलंकृत बडा भारी जुलूस निकाला गया था। सिद्धराज जयसिंह ने सिद्धहेम व्याकरण का भव्य जुलूस निकाला था, उसके बाद सम्भवतः यही सर्वप्रथम साहित्य-प्रकाशन का ऐसा भव्य जुलूस होना चाहिये। इन प्रकाशनों के उपलक्ष में प्रकाश हाई स्कूल में विशाल पैमाने पर प्राचीन तथा अर्वाचीन जैन साहित्य की विविध सामग्री की पृथक्-पृथक् विषयान्तर्गत एक भव्य एवं विराट् प्रदर्शनिका भी आयोजित की गयी थी एवं प्रबल जनाग्रह के कारण प्रदर्शनिका की अवधि दो तीन दिनों के लिए बढानी पडी थी। जुलूस के उपरान्त प्रकाश हाई स्कूल के विशाल प्रांगण में सुशोभित मंडप

में चतुर्विध संघ की प्रचुर उपस्थिति में नानाविध कार्यक्रमों के साथ ग्रन्थरत्नों का विमोचन किया गया, जिससे सामान्य जनता एवं बुद्धिजीवी लोग प्रचुररूपेण जैन साहित्य की ओर आकृष्ट हुए, जैन साहित्य के दर्शन से भी लोग प्रभावित हुए तथा उक्त समिति के सदस्यों में भी अपूर्व उत्साह, ओज व उमंग का संचरण हुआ।

अथक प्रयासों के परिणामस्वरूप स्वर्गीय परम पूज्य आचार्य भगवन्त श्रीमद् विजयप्रेमसूरीश्वर महाराज साहब से प्रेरित कर्मसाहित्य के २५ ग्रन्थ आज तक तैयार हो गये हैं तथा और भी तैयार हो रहे हैं। इनके अतिरिक्त अन्य भी अर्वाचीन एवं प्राचीन छोटे बडे लगभग २५ से ३० ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। बन्धविधान महाशास्त्र के सभी भाग मुद्रित होने से सम्पूर्ण बन्धविधान सटीक मुद्रित हो चुका है एवं आज आपके कर कमलों में 'भवस्थितिः (१)' का मुद्रण समर्पित कर रहे हैं।

इसके साथ ही सत्ताविधान महाग्रन्थ के 'भाष्य-चूर्णि-वृत्तियुता मूलप्रकृतिसत्ता' और उनका 'पूर्वार्धः', 'उत्तरार्धः' तथा 'आद्यतृतीयांशः' 'भाष्ययुता मूलप्रकृतिसत्ता' 'चूर्णियुता मूलप्रकृतिसत्ता' 'मूलप्रकृतिसत्ता' 'कर्मप्रकृतिकीर्तनम्' 'मार्गणाः' 'जीवभेदप्रकरणम्' 'कायस्थिति-भवस्थितिप्रकरणम्' 'द्रव्य-

परिमाणम् (१)' 'द्रव्यपरिमाणम् (२)' 'क्षेत्रस्पर्शना-प्रकरणम्' 'भवस्थितिः (२)' 'प्रकरणानि' आदि का भी मुद्रण हम आपके कर कमलों में प्रस्तुत कर रहे है।

इससे पूर्व भी हमारी संस्था द्वारा **'प्राचीनाः चत्वारः कर्मग्रन्थाः' 'सप्ततिका नामनो छट्ठो कर्मग्रन्थ' '१ थी ५ कर्मग्रन्थ'** आदि छोटे बडे ग्रन्थ भी प्रकाशित हुए हैं।

आज तक इस समिति द्वारा प्रकाशित किये गये समस्त ग्रन्थरत्नों की आधार शिला दिवंगत परम पूज्य आचार्य भगवन्त श्रीमद् विजय **प्रेमसूरीश्वर महाराज साहब** हैं, जिनकी सतत सत्प्रेरणा, मार्गदर्शन, प्रस्तुत साहित्य का उद्धार करने की अदम्य उत्कंठा और कालोचित अथक परिश्रम से ही प्रस्तुत ग्रन्थरत्नों का जन्म हुआ है तथा इन्हीं महापुरुष के शुभाशीर्वाद से हम ग्रन्थरत्नों के प्रकाशन के महत्कार्य में उत्तरोत्तर साफल्य की ओर पदार्पण कर रहे हैं। इन्हीं महात्मा ने हमारी संस्था को कर्मसाहित्य के इन ग्रन्थरत्नों के प्रकाशन का लाभ देकर अनुगृहीत किया। अतः हम इनके ऋणी है और इस ऋण से कभी भी उऋण नहीं हो सकते। अतः ऐसे परमोपकारी महाविभूति आचार्य भगवन्त श्रीमद् **विजयप्रेमसूरीश्वर** महाराज साहब का हम नतमस्तक कोटि-कोटि वन्दन करते हुए, इनके प्रति अवर्ण्य आभार प्रदर्शित कर रहे हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थरत्न के प्रणेता परम पूज्य गणिवर्य श्री-**वीरशेखरविजय महाराज साहब का** हम सवन्दन आभार मानते हैं। आपके अथक, अविरत, अविरल, एवं सतत परिश्रम के फलस्वरूप ही हम इस ग्रन्थरत्न को पाठकों के करकमलों में समर्पित करने में सक्षम रहे हैं।

मुद्रण करने में संस्था के निजी ज्ञानोदय प्रिन्टिंग प्रेस **के मेनेजर श्रीयुत शंकरदास** एवं उनके **अन्य कर्मचारी** गण भी धन्यवाद के पात्र हैं।

इसके अतिरिक्त जिस किसी ने भी जिस किसी भी तरह से प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से ग्रन्थ-प्रकाशन में सहायता की हो, उन सभी महानुभावों के प्रति हम अपना हार्दिक आभार प्रदर्शित करते हैं।

द्रव्यसहायक-शा. भवुतमलजो फुलचन्दजो के सुपुत्र अचलदास, पौत्र मीठालाल, अमृतलाल, सागरमल,रमेशकुमार,जोगातर परिवार (पिंडवाडा निवासी) ने श्रुतभक्ति से अनुप्रेरित एवं अनुप्राणित होकर इस ग्रन्थरत्न के मुद्रण में द्रव्यराशि के सम्यक् सहयोग से यथोचित योगदान किया है, अतः हम इनके प्रति ऋणी एवं आभारी हैं।

नजदीक भविष्य में और प्रकाशन की आशा में

भवदीय—

(i) पिंडवाडा
स्टे. सिरोहीरोड (राजस्थान) शा. समरथमल रायचन्दजी (मंत्री)

(ii) १३५/१३७ जौहरी
बाजार बम्बई–२ शा. लालचन्द छगनलालजी (मंत्री)

भारतीय-प्राच्य-तत्त्व प्रकाशन समिति

❀ समिति का ट्रस्टी मंडल ❀

(१) शेठ रमणलाल दलसुखभाई (प्रमुख) खंभात
(२) शा. खूबचंद अचलदासजी पिंडवाडा
(३) शा. समरथमल रायचन्दजी मंत्री पिंडवाडा
(४) शा. लालचंद छगनलालजी मंत्री पिंडवाडा
(५) शेठ रमणलाल वजेचन्द अहमदाबाद।
(६) शा. हिम्मतमल रुगनाथजी बेडा
(७) शेठ जेठालाल चुनीलाल घीवाले बम्बई
(८) शा. जयचन्द भबुतमलजी पिंडवाडा

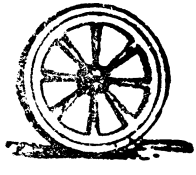

विषयानुक्रमणिका

भवस्थितिः (१) १-४४

विषयाः		पृष्ठाङ्काः
वृत्तिकृन्मङ्गलश्लोकानि		१
मूलग्रन्थारम्भमङ्गलादिचतुष्कसूचिकाऽऽद्यगाथा-		१
मङ्गलादिचतुष्कम्		२-३
ओघत उत्कृष्ट-जघन्यभवस्थितिः		३-४
आदेशत उत्कृष्टभवस्थितिः		४-२१
नरकगत्योघादीनाम्	(१०)	४
प्रथमादिसप्तनारकाणाम्	(७)	४-६
तिर्यग्गत्योघादीनाम्	(७)	६-७
असंज्ञि-पर्याप्तासंज्ञिनोः	(२)	७-८
देवभेदानाम्	(२९)	८-१२
एकेन्द्रियौघादीनाम्	(६)	१३-१४
द्वीन्द्रियौघादीनाम्	(६)	१४-१५
अप्कायौघादीनाम्	(९)	१५-१७
वनस्पतिकायौघादीनाम्	(३)	१७-१८
सिंहावलोकन्यायेन शङ्का-समाधाने		१८-१९
स्त्रीवेदस्य	(१)	२०
उक्तशेषाणां सप्तत्रिंशतः	(३७)	२०-२१
आदेशतो जघन्यभवस्थितिः		२१-२९
नरकगत्योघादीनां	(५)	२१-२३
द्वितीयादिनरकषट्कस्य	(६)	२३-२४
ज्योतिष्कादिसुराणां	(२७)	२४-२८
सर्वपर्याप्तादीनां	(२६)	२८-२९
शेषत्रिपञ्चाशतः	(५३)	२९

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
भवस्थितिग्रन्थोपसंहारः	३०-३१
परिशिष्टानि	**३४-४३**
प्रथमे परिशिष्टे मूलगाथाः	३४-३५
द्वितीये परिशिष्टे मूलगाथाद्यांशाः	३६
तृतीये परिशिष्टे साक्षिग्रन्थाः	३७
चतुर्थे परिशिष्टे साक्षिग्रन्थकाराः	३७
पञ्चमे परिशिष्टे-ऽतिदिष्टग्रन्थाः	३८
षष्ठे परिशिष्टे-ऽतिदिष्टग्रन्थकाराः	३८
सप्तमे परिशिष्टे व्याकरणसूत्राणि	३९
अष्टमे परिशिष्टे न्यायाः	३९
नवमे परिशिष्टे भवस्थितिसम्बन्धि-	
५ मूलमार्गणोत्तर११७ भेदप्रदर्शियन्त्रम्	४०-४१
दशमे परिशिष्टे उत्कृष्ट-जघन्यभवस्थितिप्रदर्शियन्त्रम्	४२-४३
उपसंहारः	४४

शुद्धिपत्रकम्

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
१	२	०सद०	सद्०
१	८	०न भ०	०न·भ०
१	१२	यस्य	यस्या
१	१४	०शिवैः०	०शिवै०
५	१९	पतिपादिता	प्रतिपादिता
६	१८	इति.	इति ।
७	१५	३५	३५/
७	२३	२/-	-२/
१०	२३	०सङ्ख्य	०सङ्ख्य-
११	५	०म्उ०	०म् उ०
११	१६	०ति	०तिः
११	२२	०ग्रवे०	०ग्रैवे०
१२	२०	०प्येकना-	०प्येकेना-
१३	८	भव त,	भवति
१३	२५	०पृथ्वी	०पृथ्वी-
१५	१४	०काम-	०काम
१६	४	-"ति०	-"ति०
१६	१५	०मश०	०मर्श०
१६	२०	०माना	०माना,
१६	२५	वायर-	बायर-
२७	११	गोथमा	गोयमा
३१	१	स्वपज्ञ-	स्वोपज्ञ-
३१	११	कर्वन्तु	कुर्वन्तु
३५	४	०ऊगं	०ऊणं
४३	१	प.	,प.
४३	३	प.	,प०
४३	१२	सा	सा०
४३	२३	नं०पु १	नपुं० १

ओंकारबिन्दुसंयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव, ॐकाराय नमो नमः॥ ॥

अज्ञानतिमिरान्धानां, ज्ञानाञ्जनशलाकया।
नेत्रमुन्मीलितं येन, तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ ॥

अथ

गणिवर्यश्री-
वीरशेखरविजयसूत्रिता
स्वोपज्ञ-
प्रेमप्रभावृत्तिपरिकलिता
भवस्थितिः (१)
दशपरिशिष्टपरिवृता

-:अर्घ्यांञ्जलि :-

जिन्होंने' भवरूपी कूपसे संयमरूपी रज्जु द्वारा बाहर निकाला। और प्रव्रज्यादिन से लेकर बारह साल तक निजी निश्रा में रख कर ग्रहण शिक्षा और आसेवन शिक्षा के साथ साथ ही संस्कृत-प्राकृतव्याकरण न्याय दर्शन तर्क काव्य कोश छन्द अलङ्कार प्रकरण आगम छेदादि विविधविषयक शास्त्रों के परिशीलन द्वारा सुधारस पीलाया।

जिन्होंकी सतत सत्प्रेरणा और कृपादृष्टिसे ही महागंभीर और अतिभगीरथ ऐसे कर्मसाहित्य के नव निर्माण में और **सम्पादन** में तथा प्राचीन कर्म**साहित्य के सम्पादन** आदि में आज लगातार २७ **साल** तक प्रयत्नशील रहा हुं।

उन कर्म**साहित्य** के सूत्रधार **सिद्धान्तमहोदधि सच्चारित्र**चूडामणि परमशा**सन**प्रभावक सुविशालगच्छाधिपति परमाराध्यपाद स्वर्गीय–

आचार्य भगवंत–

श्रीमद् विजयप्रेमसूरीश्वरजी महाराजा

की परम पवित्र स्मृति में

भवदीय कृपैकाकाङ्क्षी

मुनिवीरशेखरविजय गणी

सकलागम रहस्यवेदि सूरिपुरन्दर
बहुश्रुत गीतार्थ — परज्योतिर्विद परमगुरूदेव

परम पूज्य आचार्य देवेश श्रीमद्
विजय दान सूरीश्वरजी महाराजा

कर्म साहित्य ग्रंथोना प्रेरक,मार्गदर्शक अने संशोधक
सिध्धान्त महोदधि सुविशाल गच्छाधिपति
कर्मशास्त्र रहस्यवेदी शासन शिरछत्र

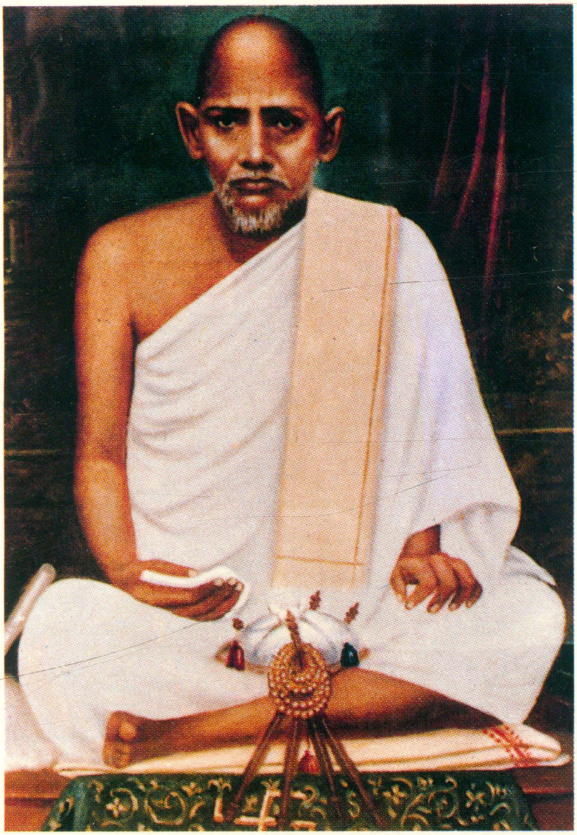

स्व. परम पूज्य आचार्य देव श्रीमद्
विजय प्रेम सूरीश्वरजी महाराजा

નિઃસ્પૃહ શિરોમણિ ગીતાર્થ મૂર્ધન્ય

ગચ્છહિત ચિંતક

સ્વઃ પરમ પૂજ્ય આચાર્યદેવ શ્રીમદ્

વિજય હીર સૂરીશ્વરજી મહારાજ

॥ श्रीशङ्खेश्वरपार्श्वनाथाय नमः ॥

॥ श्री आत्म-कमल-वीर-दान-प्रेम-हीरसूरीश्वरसद्गुरुभ्यो नमः ॥

मुनिश्रीवीरशेखरविजयसूत्रिता

स्वोपज्ञ-

प्रेमप्रभावृत्तिपरिकलिता

भवस्थितिः

प्रेमप्रभावृत्तिः —

दर्शितसकलजगज्जन भवस्थितिभ्रम-भवस्थितिविनाशिम् ।
श्रीवीरतीर्थनाथं, नौमि सुरासुरनरनतांह्रिम् ॥ १ ॥
वीरात्त्रिपदीं प्राप्य, श्रुतनिधिमद्वादशाङ्गीं च उदिता यैः ।
तान् गौतमादिगणधर-भगवत एकादश स्तौमि । २ ॥
यस्याऽस्त्यमृतमङ्गुष्ठे, यो-ऽनेकलब्धिसंभृतः ।
अभीष्टार्थस्य दायं तं, स्मरामि गौतमं गुरुम । ३ ॥
वन्दे गणधरगुम्फित-मागममर्हदुदितं शिवैकपथम् ।
सप्तनयसप्तभङ्गी-निक्षेपचतुष्कसंकलितम् ॥ ४ ॥
श्रीशारदां हृदि स्मृत्वा, गुरुं नत्वा श्रुतोदधेः ।
कुर्वे प्रेमप्रभावृत्तिं, स्वोपज्ञाया भवस्थितेः । ५ ॥

एतर्हि शिष्टजनसमयपरिपालनाय प्रारम्भेऽभीष्टदेवता-स्तुत्यादिरूपमङ्गलाविचतुष्कसूचिकां पद्यार्यां निबध्नाति ग्रन्थकारः—

खविअभवठिइसिरिमुहरि–पासं पणमिअ हियत्थमत्तसुया ।
वोच्छं भवठिइमोहे, गइइंदियकायवेअसण्णीसुं ॥ १ ॥ (गीतिः)

(प्रे०) "खविअ०" इत्यादि, 'क्षपितभवस्थितिश्रीमुहरिपार्श्वं' मुहरौ=मुहरिसंज्ञके तीर्थे स्थितः पार्श्वः=त्रयोविंशतितमो जिनेश्वरो मुहरिपार्श्वः, श्रिया=निखिलत्रिलोकीजनानां चित्तचमत्कारोत्पादिन्या हृदयप्रह्लादकारिण्या परमार्हन्त्यमहाप्रभावप्रकटकारिण्या-ऽष्टमहाप्रातिहार्यादिसंपदा चतुस्त्रिंशदतिशयशोभया समग्रलोकालोकाखिलभावप्रत्यक्षकारिकेवलज्ञानलक्ष्म्या वा संयुतो मुहरिपार्श्वः श्रीमुहरिपार्श्वः, क्षपिता=विनाशिता भवस्य=संसारस्य नरकादिगतिरूपस्य=नारकादिभवलक्षणसंसारसम्बन्धिनीति यावत् स्थितिः=वासो येन स क्षपितभवस्थितिः, स चासौ श्रीमुहरिपार्श्वः क्षपितभवस्थितिश्रीमुहरिपार्श्वस्तम्, क्षपितभवस्थितिश्रीमुहरिपार्श्वं 'प्रणम्य' प्रकर्षेण त्रिकरणयोगेन नत्वा=प्रणिपातं विधाय "प्राक्काले" (सि० ५-४-४७) इत्यनेन व्याकरणसूत्रेण प्राक्कालार्थे क्त्वाप्रत्ययस्य विधीयमानत्वेनोत्तरक्रियासापेक्षत्वादुत्तरक्रियामाह-"वोच्छं" 'वक्ष्ये' भणिष्यामि=शब्दतो निरूपणाविषयीकरिष्यामीति यावत्। किम्? इत्यत आह-"भवठिइं" ति 'भवस्थितिं' भवस्य=नरकगत्यादिपर्यायरूपस्य भवे=नैरयिकादिपर्यायरूपे वा स्थानं स्थितिः =जघन्योत्कृष्टावस्थानकालात्मिका भवस्थितिः=नरकगत्याद्यन्यतरैकभवसत्कजघन्योत्कृष्टकालावस्थानलक्षणा, ताम्, भवस्थितिम् =एकभवजघन्योत्कृष्टायूरूपाम्। कुत्रेत्यत आह-"ओहे गइइंदियकायवेअसण्णीसु" ति 'ओघे गतीन्द्रियकायवेदसंज्ञिषु' ओघे=नरकगत्यादिमार्गणाविशेषं विना सामान्यतः प्ररूपणायां तथा विशेषतो गतीन्द्रियकायवेदसंज्ञिरूपमूलमार्गणापञ्चकसत्कसप्तदशाधिकशतोत्तरमार्गणाभेदेष्विति। ननु किं स्वशक्तिसामर्थ्येन स्वमनसा वक्ष्य उताऽन्यथेत्यत आह-"अत्तसुया" त्ति, 'आप्तश्रुतात्' "गम्ययपः कर्माधारे" (सि.२-२-७४) इति व्याकृतिवचनेनाऽऽप्तश्रुतमाश्रित्य,

न पुनः स्वतन्त्रतया स्वशक्तिप्रभावेन स्वमनीषिकयेति यावत् अनेन च ग्रन्थकृता स्वस्योद्धतत्वं निराकृतम्, स्वलघुता च प्रदर्शिता, ग्रन्थस्याऽऽदरणीयता चा-ऽऽविष्कृता । किमर्थमित्यत आह– "हियत्थं" ति 'हितार्थं' हिताय = मोक्षाय हितार्थं स्वपरयोरित्याक्षिप्यते ततः स्व-परकल्याणार्थम् ।

तदेवं ग्रन्थकृता मङ्गलादिचतुष्कं प्रदर्शितम् । तद्यथा–"खविअभवठिइसिरिमुहरिपासं पणमिअ" इति गाथांशेन परमाभीष्टदेवताप्रणतिलक्षणमेकान्तिकमात्यन्तिकञ्च भावमङ्गलं प्रकटीकृतम्, "वोच्छं ... ..." इत्यादिगाथोत्तरार्धेना-ऽभिधेयमभिव्यक्तीकृतम्, "अत्तसुय।" इति पदेन श्रद्धानुसारिणः प्रति गुरुपर्वक्रमरूपः सम्बन्धः प्रादुष्कृतः, तर्कानुसारिणः प्रति पुनरभिधेयाऽभिधायकरूपो-ऽनुक्तो-ऽपि गम्यत एव । "हियत्थं" इति पदेन च प्रयोजनमपि साक्षाद् व्यञ्जितम् । तथाहि-प्रयोजनं द्विविधम्, अनन्तरपरम्परविभागात्, तद् द्विविधमपि द्वेधा, ग्रन्थनिर्मातृ-पठितृप्रकारात्, तत्र ग्रन्थनिर्मातुरनन्तरप्रयोजनं भव्यजन्तुप्रकृतग्रन्थबोधकारापणम्, ग्रन्थग्रन्थनरूपस्वाध्यायलक्षणाभ्यन्तरतपसा कर्मनिर्जरा वा, पठितुरनन्तरप्रयोजनं प्रकृतग्रन्थज्ञानम्, द्वयोरपि परम्परप्रयोजनं तु परमश्रेयःपदावाप्तिः ॥१॥

॥ इति मङ्गलादिचतुष्कम् ॥

अथ "यथोद्देशं निर्देशः" इति न्यायेनैकभवजघन्योत्कृष्टायुःप्रमाणात्मिकां भवस्थितिं प्ररूपयिषुरादौ तावत्तामोघतो जघन्योत्कृष्टभेदतो द्विविधामपि पथ्यार्यापूर्वार्धेन प्राह—

तेत्तीसुदही जेट्ठा, भवे भवठिई लहू य खुड्डभवो ।
जेट्ठोघव्वऽत्थि णिरय-सुरदुपणिंदितसवेअसण्णीणं।।२।।(गी.)

(प्रे०) "तेत्तीसु०" इत्यादि, ओघतो 'ज्येष्ठा' उत्कृष्टा भवस्थितिः 'त्रयस्त्रिंशदुदधयः' त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणा भवेत्, अनुत्तरदेव-सप्तमनारकयोरन्यतरस्मिन्नेकस्मिन् भवे उत्कृष्टतस्तावत्कालावस्थायित्वात् 'लघ्वी' जघन्या भवस्थितिः 'क्षुल्लकभवः' षट्पञ्चाशदधिकशतद्वयाऽऽवलिकामितक्षुल्लकभवप्रमाणा भवति, मनुष्य-तिरश्चोरन्यतरस्मिन्नेकस्मिन्नपर्याप्तभवे जघन्यतस्तावन्मात्रकालस्थायित्वात् ।

॥ इत्योघतो जघन्योत्कृष्टभवस्थितिः ॥

॥ अथाऽऽदेशतः सप्तदशाधिकशतमार्गणानामुत्कृष्टभवस्थितिः ॥

अथा-ऽऽदेशतो भवस्थितिं निरूपयितुकाम आदौ तावदुत्कृष्टां भवस्थितिमभिदधत् यास्वोघवदस्ति सा. ता मार्गणा संगृह्याह शेषेण गाथोत्तरार्धेन–"जेट्ठो०" इत्यादि, निरय-सुर-द्विपञ्चेन्द्रिय-त्रस-वेद-संज्ञिनां "द्वन्द्वादौ श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते" इति न्यायेन द्विशब्दस्य चतुर्भिः सम्बन्धाद् निरयस्य=निरयगतिसामान्यस्य सुरस्य=सुरगतिसामान्यस्य द्विपञ्चेन्द्रिययोः=पञ्चेन्द्रियौघ-पर्याप्तपञ्चेन्द्रिययोर्द्वित्रसयोः=त्रसकायसामान्य-पर्याप्तत्रसकाययोर्द्विवेदयोः=पुरुषवेद-नपुंसकवेदयोर्द्विसंज्ञिनोः=संज्ञिसामान्य-पर्याप्तसंज्ञिनोश्चेति सर्वमीलितानां दशानां मार्गणानां ज्येष्ठा भवस्थितिरोघवदस्ति, यथौघ उत्कृष्टभवस्थितिस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणा भणिता तथा-ऽऽसामपि विज्ञेया, ओघवदिहा-ऽप्यनुत्तरसुर-सप्तमनारकयोरन्यतरस्य प्रवेशात् ।।२।।

सम्प्रति रत्नप्रभादिप्रथमादिसप्तनारकभेदानां नरकगत्यवान्तरभेदरूपाणामुत्कृष्टां भवस्थितिं वक्तुकाम आहैकां पथ्यार्याम्-

पढमाइगणिरयाणं, कमसो एगो य तिण्णि सत्त दस ।
सत्तरह य बावीसा, तेत्तीसा सागरा णेया ।।३।।

(प्रे०) "पढमाइग०" इत्यादि, प्रथम आदौ येषां ते प्रथमादिकाः, "शेषाद्वा" (सि०७-३-१७५) इत्यनेन समासान्तः कच्-प्रत्ययः, ते च ते निरयाश्च प्रथमादिकनिरयास्तेषां रत्नप्रभा-शर्करा-प्रभा-वालुकाप्रभा-प्रङ्कप्रभा-धूमप्रभा-तमःप्रभा-महातमःप्रभासंज्ञक-सप्तपृथ्वीगतानां सप्तनैरयिकभेदानां 'क्रमशः' क्रमेणैकः, चकारः पादपूर्त्यै, एवमग्रे-ऽपि, त्रयः सप्त दश सप्तदश द्वाविंशतिस्त्रयस्त्रिंशत् 'सागराः' पदैकदेशे-ऽपि पदसमुदायोपचारात्सागरोपमाः 'ज्ञेया' प्रकृतत्वादुत्कृष्टभवस्थितिरवसातव्या । किमुक्तं भवति-प्रथमरत्नप्रभाभिधपृथ्वीनरकस्योत्कृष्टभवस्थितिरेकः सागरोपमः "अर्थवशाद्वचनविपरिणामः" इति न्यायादिह बहुवचनान्तः सागरोपमशब्द एकवचनान्तत्वेन विपरिणतः । द्वितीयशर्कराप्रभाख्यपृथिवीनारकस्य त्रीणि सागरोपमाः, तृतीयवालुकाप्रभाह्वपृथ्वीनैरयिकस्य सप्त सागरोपमाः, चतुर्थपङ्कप्रभासंज्ञकपृथिवीनिरयस्य दश सागरोपमाः, पञ्चमधूमप्रभाभिख्यपृथ्वीनारकस्य सप्तदश सागरोपमाः, षष्ठतमःप्रभानामकपृथिवीनैरयिकस्य द्वाविंशतिः सागरोपमाः, सप्तममहातमःप्रभानामधेयपृथ्वीनिरयस्य त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाः, ततो-ऽधिककालस्या-ऽनवस्थानात् ।

तथा च पतिपादिता प्रथमादिनिरयाणामुत्कृष्टा भवस्थितिर्जीवसमासे-

"एगं च तिन्नि सत्त य,दस सत्तरसेव हुंति बावीसा ।
तेत्तीस उदहिनामा,पुढवीसु ठिई कमुक्कोसा॥२०२॥" इति ।

तथा वाचकमुख्यैस्तत्त्वार्थसूत्रे-ऽपि-"तेष्वेक-त्रि-सप्त-दश-सप्तदश-द्वाविंशति-त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाः सत्त्वानां परा स्थितिः ।" इति । अत्र 'तेषु' इतिपदेन रत्नप्रभाख्यप्रथमपृथ्व्यादिनरकेष्विति बोध्यम् । एवमन्यत्र षडशीतिसंग्रह-बृहत्संग्रहणीप्रमुखग्रन्थेष्वपि गवितोऽस्ति ।

इयमपि ज्येष्ठा भवस्थितिः सामान्यतो भणिता । विशेषतः पुनस्तत्तत्पृथिवीप्रस्तटेषु पृथक्पृथग्जातीया भवति । सा चेह ग्रन्थ-गौरवादिहेतुना ना-ऽधिकृता, ग्रन्थान्तरतो-ऽवसातव्या ॥३॥

इदानीं तिर्यग्गत्योघादिमार्गणानामुत्कृष्टां भवस्थितिमाह—

तिरियस्स पणिंदितिरिय-णरतप्पज्जत्तजोणिणीणं च ।
तिण्णि पलिओवमाणि अ-मणतप्पज्जाण पुव्वकोडी उ ॥४॥
(गीतिः)

(प्रे०) "तिरियस्स" इत्यादि, 'तिरश्चः' तिर्यग्गत्योघस्य 'पञ्चेन्द्रियतिर्यङ्नरतत्पर्याप्तयोनिमतीनां च' एते कृतेतरेतरद्वन्द्वाः षष्ठ्या निर्दिष्टाः, तच्छब्दश्च "द्वन्द्वादौ श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते" इति न्यायात् द्वाभ्यामप्यभिसम्बध्यते, ततश्चायमर्थः- पञ्चेन्द्रियतिरश्चः=पञ्चेन्द्रियतिर्यग्गतिसामान्यस्य नरस्य=मनुष्यगतिसामान्यस्य तत्पर्याप्तयोः=तच्छब्दस्य पूर्ववस्तुपरामर्शकारित्वात्पर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यक्-पर्याप्तमनुष्ययोः, तद्योनिमत्योः-तिर्यग्योनिमती-मनुष्ययोनिमत्योश्च चकारः समुच्चयार्थकः, ज्येष्ठा भवस्थितिस्त्रीणि पल्योपमाणि भवति, युगलिकभवे ततोऽधिकायुःस्थितेरभावात्। यदुक्तं श्रीजीवसमासे-"नरतिरियाणं तिपल्लं च ॥२०२॥" इति ।

तथा श्रीजीवाजीवाभिगमसूत्रे-ऽपि "तिरिक्खजोणियाणं उक्कोसेण तिन्नि पलिओवमाइं, एवं मणुस्साणवि ।" (प्रति.३, सू.२२२/पत्र.४०६-२)

तथा बृहत्संग्रहण्याम्-"गब्भनरतिपलिआऊ" (गा० २६०) इति ।

इदमुक्तं भवति-तिर्यग्गत्योघस्योत्कृष्टा भवस्थितिर्हि पञ्चेन्द्रियतिर्यगपेक्षयैव त्रिपल्योपमानि प्राप्यते, शेषतिर्यग्भेदानां ततो न्यूनायुष्कत्वात् ।

प्रदर्शिता चोत्कृष्टभवस्थितिस्त्रिपल्योपममिता पञ्चेन्द्रियतिरश्चः श्रीप्रज्ञापनासूत्रे–"पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पन्नत्ता ? गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं" इति । एवं जीवाजीवाभिगमादिसूत्रेष्वपि ।

पञ्चेन्द्रियतिर्यक्सामान्यस्य मनुष्यसामान्यस्य चोत्कृष्टभवस्थितिस्तत्पर्याप्तभेदापेक्षयैव संभवति, तदपर्याप्तभेदयोरन्तर्मुहूर्तमात्रस्थितिकत्वात् ।

पर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यगुत्कृष्टभवस्थितिरपि पर्याप्तगर्भजचतुष्पदस्थलचरसंज्ञिपञ्चेन्द्रियतिर्यगपेक्षयाऽवाप्यते ।

तस्य चोत्कृष्टभवस्थितिर्यथोक्तमाना प्रतिपादिता मलधारिहेमचन्द्रसूरिभिर्जीवसमासवृत्तौ– "पर्याप्तगर्भजस्थलचराणां त्रीणि पल्योपमान्युत्कृष्टमायुः"(गा.२१०/पत्र०२०६)इति ।

तथा पञ्चसंग्रहवृत्तौ मलयगिरिसूरिपादैः–"चतुष्पदस्थलचराणां त्रीणि पल्योपमानि" (गा. ३५. पत्र. ७१-१) इति ।

तिरश्चो-मानुष्योरुत्कृष्टाभवस्थितिस्त्रिपल्योपमप्रमिता तु देवकुरुपञ्चकोत्तरकुरुपञ्चका-ऽवसर्पिणीप्रथमारकोत्सर्पिणीषष्ठारकगतपञ्चभरतपञ्चैरावतसत्कयुगलिन्यपेक्षया संघटते, तेषां तावदायुष्कत्वात् ।

उक्तश्च जीवाजीवाभिगमसूत्रे त्रिविधाख्यायां द्वितीयप्रतिपत्तौ– 'तिरिक्खजोणित्थीणं भंते केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?, गो. जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं । ––मणुस्सित्थीणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?' गोयमा! खेत्तं पडुच्च जह० अंतो० उक्को० तिण्णि पलिओवमाइं," (सू०४७/पत्र०५३ २/-५४-१) इति ।

अधुना गाथाशेषेणा-ऽसंज्ञिमार्गणाभेदद्वये प्रकृतमाह-"अमण०"

इत्यादि, 'अमनस्तत्पर्याप्तयोः' प्राकृतत्वात् 'द्विवचनस्य बहुवचनम्' (सि०८-३-१३०) इत्यनेन द्विवचनस्य स्थाने बहुवचनम्, अमनसः =असंज्ञिसामान्यस्य तत्पर्याप्तस्य=पर्याप्तसंज्ञिनश्चोत्कृष्टा भवस्थितिः 'पूर्वकोटिः' 'पूर्वकोटिवर्षमाना भवति, असंज्ञिनां पूर्वकोटिवर्षायुष्कतोऽधिका-ऽऽयुषोऽभावात्।

एषा-ऽपि संमूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यगपेक्षया प्राप्यते।

सा च प्रज्ञापनायां यथोक्ता दर्शिता।

तथा च तद्ग्रन्थः-"संमुच्छिमपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी,.....-— " (सू० ६८/पत्र०१७३-१) इति।

इमा-ऽपि पर्याप्तापेक्षया बोध्या, अपर्याप्तानां सर्वेषामप्युत्कृष्टभवस्थितेरन्तर्मुहूर्त्ततोऽनधिकत्वात् ॥४॥

एतर्हि देवगतिसत्कैकोनत्रिंशदुत्तरभेदानामुत्कृष्टभवस्थितिं पञ्चार्यात्रयेण प्रतिपादयति—

भवणस्स साहियुदही, पल्लं वंतरसुरस्स विण्णेया।
पलिओवममब्भहियं जोइसदेवस्स णायव्वा ॥५॥
सोहम्माईणं कमा, अयरा दो साहिया दुवे सत्त।
अब्भहिया सत्त य दस, चउदस सत्तरह णायव्वा ॥६॥
एत्तो एगेगहिया, णायव्वा जाव एगतीसुदही।
उवरिमगेविज्जस्स उ, तेत्तीसाऽणुत्तराण भवे ॥७॥

(प्रे०) "भवणस्स" इत्यादि, 'भवनस्य' 'ते लुग्वा' (सि० ३-२-१०८) इति सूत्रेणोत्तरपदलोपदर्शनेन भवनपतिदेवस्योत्कृष्टा भवस्थितिः, 'साधिकोदधिः' सातिरेकसागरोपमो भवति, ततोऽधिकायुस्स्थितेरसंभवात्। उक्तश्च जीवसमासे-"असुरेसु

सारमहियं" (गा०२०४/पत्र० २००) इति । तथा प्रज्ञापनासूत्रेऽपि—"भवणवासीणं देवाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पन्नत्ता ? गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं साइरेगं सागरोवमं" (सू०९५/पत्र०१७०-२) इति । एवमन्यत्राऽपि ।

इदानीं व्यन्तरदेवमार्गणायाः प्रस्तुतं स्तौति- "पल्लं" इत्यादि, 'व्यन्तरसुरस्य' व्यन्तरदेवस्योत्कृष्टभवस्थितिः 'पल्यं' "देवो देवदत्तः" इति न्यायात् पल्योपमं भवति, तथैवोपलम्भात् । उक्तञ्च जीवसमासे-"पल्लो पुण वंतरसुराणं ॥२०४॥" इति । तथा प्रज्ञापनायामपि--"वाणमंतराणं भंते! देवाणं केवइयं कालं ठिई पन्नत्ता ?, गोयमा ! जहन्नेणं दस वाससहस्साइं उक्कोसेणं पलिओवमं," (सू० १००/पत्र० १७४-२) इति ।

एवमन्यत्राऽपि ।

अधुना ज्योतिष्कसुरमार्गणाया आह-"पलिओवम०"इत्यादि, 'ज्योतिर्देवस्य' ज्योतिष्कसुरभेदस्योत्कृष्टभवस्थितिः 'पल्योपममभ्यधिकं' साधिकपल्योपममिता ज्ञातव्या। यदुक्तं जीवसमासे- "पल्लं च साहियं जोइसे" (गा० २०५) इति । "व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिः" इति न्यायेन "जोइसवरिसलक्खाहियं पलियं"-इति वचनाद् वर्षलक्षाभ्यधिकपल्योपमप्रमाणा ज्ञातव्या,शास्त्रेषु तथैवोपलम्भात् । उक्तञ्च प्रज्ञापनायाम्-"जोईसियाणं देवाणं पुच्छा गोयमा ! जहन्नेणं पलिओवमट्ठभागो उक्कोसेणं पलिओवमं वाससयसहस्समब्भहियं," (सू० १०१/पत्र० १७४-२) इति ।

एवमन्यत्राऽपि ।

इयमपि चन्द्रापेक्षयाऽवगन्तव्या, सूर्यादीनां सहस्रवर्षाधिकपल्योपमादिकत्वात् । यदुक्तम्—

"पलियं च वरिसलक्खं, चंदाणं सूरियाण पलियं तु ।
वरिससहस्सेणऽहियं, गहाण पलिओवमं पुण्णं ॥
नक्खत्ते पलियद्धं, तारयदेवाण पलियचउभागो ।
समिदेवीणं प्राउं, उक्कोसं होइ पलियद्धं ॥ ॥" इति ।

सम्प्रति वैमानिकदेवानां प्रकृतमाह—"सोहम्माईण" इत्यादि, 'सौधर्मसुरप्रभृतीनां महाशुक्रसुरान्तानां सप्तकल्पदेवाना-मुत्कृष्टभवस्थितिः 'क्रमात्' क्रमशः "अयरा"इति पदमितः सर्वत्र सम्बध्यते ततः 'द्वौ' द्वौ सागरोपमौ "अर्थवशाद्वचनविपरिणामः" इति न्यायादिह बहुवचनान्तोऽपि सागरोपमशब्दो द्विवचनान्तो गृह्यते, 'साधिको द्वौ' व्याख्यानात् पल्योपमाऽसङ्ख्येयभागेनाऽभ्य-धिकं सागरोपमद्वयं 'सप्त' सप्त सागरोपमाः, 'अभ्यधिकाः सप्त' पल्योपमाऽसङ्ख्येयभागेना-ऽभ्यधिकाः सप्त सागरोपमाः, चकारः समुच्चयार्थः, स चोत्तरत्र 'सप्तदश' इत्यस्य प्रान्ते प्रयोज्यः, 'दश' दश सागरोपमाः 'चतुर्दश' चतुर्दश सागरोपमाः, 'सप्तदश' सप्त-दश सागरोपमा ज्ञातव्याः, तथैव दर्शनात् ।

यदुक्तं बृहत्संग्रहण्यां तथा जीवसमासे—
"दो साहि सत्त साहिय, दस चउदस सत्तरेव——।"
(बृहत्सं० गा.१२/जीवस० गा.२०६) इति।
एवं प्रज्ञापनादिग्रन्थेष्वपि ।

ततश्चायमर्थः—सौधर्मसुरस्य द्वे (२) सागरोपमे, ईशान-सुरस्य पल्योपमासङ्ख्यभागाधिके द्वे (२) सागरोपमे, सनत्-कुमारस्य सप्त (७) सागरोपमाणि, माहेन्द्रसुरस्य पल्योपमासङ्ख्य भागाभ्यधिकानि सप्त (७) सागरोपमाणि, ब्रह्मलोकसुरस्य दश (१०) सागरोपमाणि, लान्तकसुरस्य चतुर्दश (१४) सागरोपमाणि, महाशुक्रसुरस्य सप्तदश (१७) सागरोपमाण्युत्कृष्टभवस्थितिर्भवति ।

अथ सहस्रारप्रमुखाणां सुराणामुत्कृष्टभवस्थितिं कथयति- "एत्तो" इत्यादि, 'क्रमात्' इति पदं पूर्वतोऽनुवर्तते, ततः 'एतस्मात्' महाशुक्रसुरस्योदितत्वात्तत ऊर्ध्वं सहस्रारप्रमुखाणां सुराणाम्उत्कृष्टभवस्थितिः क्रमशः'एकैका-ऽधिकाः'एकैकेनसागरोपमेणा-ऽधिकाः=वृद्धि नीताः सागरोपमाः 'ज्ञातव्या' यत्तदोर्नित्यसापेक्षत्वादग्रे यावच्छब्दस्य वक्ष्यमाणत्वात्तावज्ज्ञातव्या 'यावदेकत्रिंशदुदधयः' यावदेकत्रिंशत्सागरोपमाणि 'उपरितनग्रैवेयकस्य' सर्वग्रैवेयकाणामुपरि स्थितस्याऽऽदित्यसंज्ञकस्य नवमग्रैवेयकसुरस्येति ।

अयम्भावः—महाशुक्रसुरस्य सप्तदशसागरोपमेष्वेकस्य सागरोपमस्य प्रक्षेपे-ऽष्टादश (१८) सागरोपमाणि सहस्रारसुरस्य भवति, अनया रीत्या नवमग्रैवेयकसुरं यावन्नेतव्यम्. तद्यथा—आनतसुरस्यैकोनविंशतिः (१९) सागरोपमाणि, प्राणतसुरस्य विंशतिः (२०) सागरोपमाणि, आरणसुरस्यैकविंशतिः (२१) सागरोपमाणि, अच्युतसुरस्य द्वाविंशतिः (२२) सागरोपमाणि, सुदर्शनसंज्ञकप्रथमग्रैवेयकसुरस्य त्रयोविंशतिः (२३) सागरोपमाणि, सुप्रतिबद्धाख्यद्वितीयग्रैवेयकसुरस्य चतुर्विंशतिः(२४) सागरोपमाणि. मनोरमनामतृतीयग्रैवेयकसुरस्य पञ्चविंशतिः (२५) सागरोपमाणि,सर्वभद्राऽभिधानचतुर्थग्रैवेयकसुरस्य षड्विंशति(२६)सागरोपमाणि,विशालाऽभिधपञ्चमग्रैवेयकसुरस्य सप्तविंशतिः (२७) सागरोपमाणि, सुमनसाख्यषष्ठग्रैवेयकसुरस्या-ऽष्टाविंशतिः। (२८) सागरोपमाणि, सौमनसाख्यसप्तमग्रैवेयकसुरस्यैकोनत्रिंशत् (२९) सागरोपमाणि, प्रीतकरसंज्ञकाष्टमग्रैवेयकसुरस्य त्रिंशत् (३०) सागरोपमाणि, आदित्यनामनवमग्रैवेयकसुरस्यैकत्रिंशत् (३१)सागरोपमाण्युत्कृष्टभवस्थितिर्भवति ।

यदुक्तं बृहत्संग्रहण्याम्—

".... .....सुक्को, तदुवरि इक्किक्कमारोवे ।।१२।।" इति

तथा जीवसमासे-ऽपि-

"— । एक्काहिया य एत्तो, सक्काइसु सागरुवमाणा ॥२०६॥" इति ।

एवं प्रज्ञापनाद्यन्यग्रन्थेष्वपि ।

अधुना-ऽनुत्तरसुराणां प्रस्तुतकायस्थितिमाचक्षते-"तेत्तीसा" इत्यादि, 'अनुत्तराणां' बहुवचनात्पञ्चानां विजय-वैजयन्त-जयन्ता-ऽपराजित-सर्वार्थसिद्धसंज्ञकानामनुत्तरसुराणां प्रत्येकं 'त्रयस्त्रिंशत्' त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि 'भवेत्' उत्कृष्टभवस्थितिः स्यात्, तथैव प्रज्ञापनादिषूपलम्भात् । तथा चात्र प्रज्ञापनासूत्रम्-"विजय-वैजयंत-जयंत-अपराजितेसु णं भंते ! देवाणं केवइयं कालं ठिई पन्नत्ता?, गोयमा ! जहन्नेणं एक्कतीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं .. । सव्वट्ठसिद्धगदेवाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पन्नत्ता ?, गोयमा ! अजहण्णुक्कोसं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पन्नत्ता, (सू०१०२/पत्र०१७८-२) इति ।

तुशब्दो विशेषद्योतनपरः । विशेषश्चायं-तत्त्वार्थसूत्र-तद्भाष्यकारादीनामभिप्रायेण विजयाद्यनुत्तरसुरचतुष्कस्य प्रत्येक-मुत्कृष्टभवस्थितिर्द्वात्रिंशत्सागरोपमाणि भवति ।

यदुक्तं तत्त्वार्थसूत्रे-"आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धे च ।" (अ०४,सू०३८/भा०१,पत्र०३११) इति

तथैव तद्भाष्ये-ऽपि-"विजयादिषु चतुर्ष्वप्येकनाऽधिका द्वात्रिंशत् साप्येकेनाऽधिका त्वजघन्योत्कृष्टा सर्वार्थसिद्धे त्रयस्त्रिंशदिति ।" (अ०४,सू०३८/भा०१,पत्र०३११) इति ।

एवं सामान्येन देवभेदानामुत्कृष्टभवस्थितिः प्रोक्ता, विशेषतस्तु प्रतिप्रस्तटे भिन्न-भिन्नप्रकारा साऽस्ति । सा चेह ग्रन्थ-गौरवभयान्नोक्ता बृहत्संग्रहण्यादिषु दर्शनीया ॥५-७॥

एतर्ह्येकेन्द्रिय-पृथ्वीकायभेदषट्क उत्कृष्टभवस्थितिमेकया-पथ्यार्यया प्राह—

एगिंदिय-पुहवीणं, वरिससहस्साणि होइ बावीसा ।
सा चेव होइ तेसिं, बायरबायरसमत्ताणं ॥८॥

(प्रे०) "एगिंदिय०" इत्यादि, 'एकेन्द्रियपृथिव्योः' एकेन्द्रियसामान्य-पृथिवीकायसामान्ययोरुत्कृष्टभवस्थितिर्द्वाविंशति-वर्षसहस्राणि भवति, 'सा चैव' द्वाविंशतिसहस्रवर्षमानेवोत्कृष्ट-भवस्थितिः 'तयोर्बादर-बादरसमाप्तयोः' तच्छब्दस्य पूर्ववस्तुपरा-मर्शित्वात् तयोः एकेन्द्रिय-पृथिवीकाययोः प्रत्येकं बादर-पर्याप्तबादर-भेदयोरेतावता बादरैकेन्द्रिय-पर्याप्तबादरैकेन्द्रिय-बादरपृथ्वीकाय-पर्याप्तबादरपृथ्वीकायानां भवति । एकेन्द्रियाणाञ्च पृथ्वीकाया-पेक्षयोत्कृष्टभवस्थितिः प्राप्यते,शेषाप्कायादिभेदानामेतावत्या उत्कृष्ट-भवस्थितेरभावात् । प्रतिपादिता च यथोक्तज्येष्ठभवस्थितिः पृथ्वीकायस्य प्रज्ञापनायाम्—"पुढविकाइयाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पन्नत्ता?, गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं," (सू० ९६/पत्र० १७१-२) इति । पृथ्वीकायसामान्यस्या-ऽप्युत्कृष्टस्थितिर्बादरपृथ्वीकायापेक्षया भवति । सा-ऽपि तत्रैव प्रज्ञापनायां तथैव दर्शिता । तथा च तद्ग्रन्थः—'बायरपुढविकाइयाणं पुच्छा गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं,'(सू. ९६/पत्र० १७१-२) इति । तथा जीवाजीवाभिगमसूत्रे-ऽपि- से किं तं बादरपुढविकाइया? —, ...ठिती जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं ।" (प्रति०१, सू०१४-१५/पत्र०२२-१)इति । एवमन्यत्रा-ऽपि ।

बादरपृथ्वीकायस्योक्तोत्कृष्टभवस्थितिः पर्याप्तबादरपृथ्वी कायापेक्षया भवति, अपर्याप्तबादरपृथ्वीकायिकोत्कृष्टभवस्थितेरन्त-

मुहूर्तमात्रत्वात् । उक्ता च पर्याप्तबादरपृथ्वीकायस्योत्कृष्टा भवस्थितिर्मलयगिरिसूरिपादैः पञ्चसंग्रहवृत्तौ–"उत्कृष्टा भवस्थितिर्बादरपर्याप्तपृथिवीकायिकानां द्वाविंशतिवर्षसहस्राणि ।" (गा० ३५ मलयगिरिवृत्तिः /पत्र० ७०—२) इति ॥८॥

अधुना विकलेन्द्रियभेदषट्कस्योत्कृष्टा भवस्थितिरेकया पथ्यार्यया प्रतिपाद्यते–

बेइंदियाइगाणं, कमसो बारह समा अउणवण्णा ।
दिवसा तह छम्मासा, एवं तेसिं समत्ताणं ॥९॥

(प्रे०) "बेइंदियाइगाणं" इत्यादि, 'द्वीन्द्रियादिकानां' द्वीन्द्रिय आदिर्येषाम्, ते द्वीन्द्रियादिकाः,"शेषाद्वा" (सि०७-३-१७५) इत्यनेन कच्प्रत्ययः, तेषां द्वीन्द्रियौघ-त्रीन्द्रियौघ-चतुरिन्द्रियौघानामुत्कृष्टभवस्थितिः क्रमशो द्वादश 'समाः' वर्षाण्येकोनपञ्चाशद् दिवसास्तथा षण्मासा भवति । तथाहि द्वीन्द्रियसामान्यस्योत्कृष्टभवस्थितिर्द्वादश वर्षाणि, त्रीन्द्रियसामान्यस्योत्कृष्टभवस्थितिरेकोनपञ्चाशदहोरात्राः,चतुरिन्द्रियसामान्यस्य च षण्मासा भवति ।

उक्तश्च प्रज्ञापनायाम्–"बेइंदियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पन्नत्ता ?, गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बारससंवच्छराइं, ...तेइंदियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पन्नत्ता ? गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं एगूणवन्नं राइंदियाइं,—चउरिंदियाणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पन्नत्ता ?, गोयमा !, जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं छम्मासा, (सू०९७/पत्र०१७२-२) इति ।

तथैव जीवाजीवाभिगमसूत्रेऽपि—"से किं तं बेइंदिया ? ....ठिती जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बारस संवच्छराणि,से किं तं तेइंदिया ?, ठिई जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं एगूणपण्णराइंदिया; ....से किं तं चउरिंदिया?—ठिती उक्कोसेणं छम्मासा,–"इति ।

(प्रति०१,सू.२८-२९-३०/पत्र०३०.२/३२-१-२) इति । तथा जीव-समासेऽपि—"बारस अउणपन्नं, छप्पिय वासाणि दिवसमासा य। बेइंदियाइयाणं—...." (गा०२०८) इति । एवमन्यत्रा-ऽपि ।

एवंशब्दस्य समानवाचित्वाद् यथौघानामुक्ता तथैव 'तेसिं समाप्तानां' तच्छब्दस्य पूर्वप्रस्तुतस्य परामर्शविधायकत्वात् पर्याप्तानां द्वीन्द्रियादीनामपि बोध्या । तद्यथा-पर्याप्तद्वीन्द्रियस्योत्कृष्टभव-स्थितिर्द्वादश वर्षाणि, पर्याप्तत्रीन्द्रियस्योत्कृष्टभवस्थितिरेकोनपञ्चाश-द्दिवसाः, पर्याप्तचतुरिन्द्रियस्योत्कृष्टभवस्थितिः षण्मासा भवति ।

उक्तञ्च पञ्चसंग्रहमलयगिरिसूरिवृत्तौ—

"पर्याप्तद्वीन्द्रियाणामुत्कृष्टा भवस्थितिर्द्वादशवर्षाणि । पर्याप्त-त्रीन्द्रियाणामेकोनपञ्चाशद्दिवसाः । पर्याप्तचतुरिन्द्रियाणां षण्मासाः।" (गा०३५ मलयगिरिवृत्तिः /पत्र० ७०-२) इति ॥९॥

अथा-ऽप्कायौघादिनवकायभेदानामुत्कृष्टभवस्थितिं वक्तुकाम-माह पथ्यायाम्—

दगवाऊणं कमसो, वाससहस्साणि सत्त तिण्णि भवे ।
तिदिणा-ऽग्गिस्सेवं सिं, बायर-बायरसमत्ताणं ॥१०॥

(प्रे०) "दग०" इत्यादि, 'दक-वाय्वोः' अप्कायौघ-वायु कायौघयोरुत्कृष्टभवस्थितिः क्रमशः सप्त त्रीणि सहस्रवर्षाणि भवेत् ।

इदमुक्तं भवति—अप्कायिकसामान्यस्योत्कृष्टभवस्थितिः सप्त-सहस्र (७०००) वर्षाणि वायुकायिकसामान्यस्योत्कृष्टभवस्थितिस्त्रि-सहस्र (३०००) वर्षाणि भवति ।

उक्तञ्च प्रज्ञापनायाम्—"आउकाइयाणं भंते ? केवइयं कालं ठिई पन्नत्ता ?, गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सत्तवास-सहस्साइं........वाउकाइयाणं भंते ! केवइय कालं ठिई पन्नत्ता ?

गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिन्नि वाससहस्साइं" (सू०९६/पत्र०१७१-२-१७२-१) इति।

अथाग्निकायसामान्यस्या-ऽऽह–'तिदिणा०" इत्यादि, 'अग्नेः' अग्निकायसामान्यस्योत्कृष्टभवस्थितिः 'त्रिदिनाः' त्रयो-ऽहोरात्रा भवति। तथा चात्र प्रज्ञापनासूत्रम्–

"तेउकाइयाणं पुच्छा गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिन्नि राइंदियाइं" (सू०९६/पत्र०१७२-१) इति।

जीवाजीवाभिगमेऽपि–से किं तं बादरतेउकाइया ? — ठिती जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिन्नि राइंदियाइं......." (प्रति० १,सू०२५/पत्र०२८) इति।

अधुनोक्ताप्कायादिभेदत्रयस्य प्रत्येकं बादर-पर्याप्तबादर-भेदयोराह–"एवं"इत्यादि, 'एवम्' एवशब्दः साम्यार्थो, तत एवं= यथा-ऽप्कायादिसामान्यानामुत्कृष्टभवस्थितिरुक्ता तथैव 'तेषां बादर-बादरसमाप्तानां' तच्छब्दस्य पूर्ववस्तुपरामशकत्वात् अप्काय-वायु-काया-ऽग्निकायानां प्रत्येकं बादर-पर्याप्तबादरभेदयोरपि भवति।

किमुक्तं भवति–यथा- ऽप्कायसामान्यस्योत्कृष्टभवस्थितिः सप्तसहस्रहायनान्युक्ता तथैव बादराऽप्काय-पर्याप्तबादरा-ऽप्काययो-रप्युत्कृष्टभवस्थितिः सप्तसहस्रसमा भवति, एवं बादरवायुकाय-पर्याप्तबादरवायुकाययोरुत्कृष्टभवस्थितिस्त्रिसहस्रवर्षमाना बादर तेजस्काय----पर्याप्तबादरतेजस्काययोरुत्कृष्टभवस्थितिस्त्रिदिवस— प्रमाणा-ऽस्ति, यतः सामान्यभेदानामपि बादरभेदापेक्षयोत्कृष्टा-भवस्थितिर्भवति बादराणाञ्च यथोक्तभवस्थितिर्दर्शिता प्रज्ञापनासूत्रे।

तथा च तद्ग्रन्थः–"बादरआउकाइयाणं पुच्छा गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सत्त वाससहस्साइं —...बायर-तेउकाइयाणं पुच्छा गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिन्नि

राइंदियाइं, बायरवाउकाइयाणं पुच्छा गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिन्नि वाससहस्साइं"(सू०१६/पत्र० १०२) इति ।

तथा जीवाजीवाभिगमेऽपि—

"से किं तं बायरआउक्काइया ? ——ठिती जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सत्तवाससहस्साइं,……………… ……………

से किं तं बादरतेउक्काइया ? ……ठिती जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिन्नि राइंदियाइं,…………… ……………

से किं तं बादरवाउक्काइया ? ……-ठिती जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिन्नि वाससहस्साइं" (प्रति० १, सू० १७-२५-२६/पत्र ०२४/२-२८-२९), इति । एवमन्यत्रा ऽपि ।

बादराणामपि यथोक्तोत्कृष्टभवस्थितिः पर्याप्तबादरापेक्षया संभवति, अपर्याप्तबादराणामुत्कृष्टभवस्थितेरन्तमुहूर्तमात्रत्वात् ।

उक्ता च यथोक्तज्येष्ठभवस्थितिः पर्याप्तबादराणां पञ्चसंग्रहमलयगिरीयवृत्तौ—

"बादरपर्याप्ताप्कायिकानां सप्तवर्षसहस्राणि, बादरपर्याप्ततेजस्कायिकानां त्रयोऽहोरात्राः । पर्याप्तबादरवायुकायिकानां त्रीणि वर्षसहस्राणि, (गा० ३५/पत्र० ७०-२) इति ॥१०॥

इदानीमेकया गाथया शेषमार्गणाभेदानामुत्कृष्टभवस्थितिं दर्शयति—

वासाऽत्थि दस सहस्सा, वणपत्तेअवणतस्समत्ताणं ।
थीअ पणवण्णपलिआ, सगतीसाए मुहुत्तंतो ॥११॥

(प्रे०) "वासा" इत्यादि, 'वनप्रत्येकवनतत्समाप्तानां' पदैकदेशेना-ऽपि पदसमुदायस्या-ऽभिधानदर्शनाद् वनशब्देन वनस्पतिरुच्यते ततो वनस्पतिकायसामान्यस्य प्रत्येकवनस्पतिकायसामान्यस्य पर्याप्तप्रत्येकवनस्पतिकायस्य चोत्कृष्टभवस्थितिर्दशसहस्राणि वर्षाण्यस्ति, तथैव शास्त्रेषूपलम्भात् ।

यदुक्तं वनस्पतिसामान्यस्य प्रज्ञापनायाम्- "वणप्फइकाइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पन्नत्ता? गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं दस वाससहस्साइं, (सू०९६/पत्र०१७२-२) इति।

प्रत्येकवनस्पतिकायस्य जीवसमासवृत्तौ-(गा.२०७/पत्र.२०५) "बादरप्रत्येकतरूणां दशवर्षसहस्राणि" इति।

पर्याप्तप्रत्येकवनस्पतिकायस्य पञ्चसंग्रहवृत्तौ—

"पर्याप्तबादरप्रत्येकवनस्पतीनां दशवर्षसहस्राणि" (गा०३५।भा०१, पत्र०७०-२) इति। एवमन्यग्रन्थेष्वपि।

उक्तार्थसंक्षेपसंग्राहिणी बृहत्संग्रहणीसत्का गाथेमा-

"बाबीससगतिदसवाससहसगणितिदिणबेइआईसुं।
बारसवासुणपण्णदिण,छमासतिपलिअठिई जिट्ठा॥ ॥"
(चन्द्र० गा० २५६/२८४/४१६) इति।

अथ सिंहावलोकन्यायेना-ऽन्त्यदीपकन्यायेन वा परोत्थशङ्कासमाधानं विधीयते-ननु भवता सर्वत्र पर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यगादीनामुत्कृष्टभवस्थितिस्त्रिपल्योपमादीनि परिपूर्णानि प्रोक्ता, प्रज्ञापनासूत्र-जीवाजीवाभिगमसूत्रादिषु पुनरपर्याप्तसत्कान्तर्मुहूर्तेनोना दर्शिता। तथा चात्र प्रज्ञापनासूत्रम्-"पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते?,....पज्जत्तयाणं पुच्छा गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, (सू०९८)..... पज्जत्तमणुस्साणं पुच्छा, गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं (सू०९९)..... संमुच्छिमपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं.....पज्जत्तयाणं पुच्छा, गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणा। (सू०९८) पज्जत्तयबायरपुढविकाइयाणं पुच्छा, गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं

उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं —बायरआउक्काइयाणं पज्जत्तयाण य पुच्छा गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सत्त वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं.....बायरतेउक्काइयाणं.....पज्जत्तयाणं पुच्छा गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिन्नि राइंदियाइं अंतोमुहुत्तूणाइं। ....बायरवाउकाइयाणं ...पज्जत्तयाणं पुच्छा, गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिन्नि वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं।....बायरवणप्फइकाइयाणं.... पज्जत्तयाणं पुच्छा गोयमा! जहन्नेणं अंतोमु०उक्कोसेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं (सू. ९६)...बेइंदियाणं....पज्जत्तयाणं पुच्छा गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बारस संवच्छराइं अंतोमुहुत्तूणाइं। तेइंदियाणं.....पज्जत्तयाणं पुच्छा, गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं एगुणवन्नं राइंदियाइं अंतोमुहुत्तूणाइं। चउरिंदियाणं—पज्जत्तयाणं पुच्छा, गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं छम्मासा अंतोमुहुत्तूणाइं (सू०९७) (पत्र० १७१-२/१७४-२) इति। एवं जीवाजीवाभिगमे—ऽपि। तथैव पर्याप्तनारक-देवतानामपि। ततस्तेन सह प्रकृतग्रन्थस्य कथं न विरोध इति चेत्, उच्यते—प्रज्ञापनासूत्र-जीवाजीवाभिगमसूत्रादिषु पर्याप्तत्वेन करणपर्याप्ता गृहीता इह पुनर्लब्धिपर्याप्ताः पर्याप्तनामकर्मोदयवन्तो विवक्षिताः। लब्धिपर्याप्ताः पर्याप्तनामकर्मोदयवन्तो हि करणाऽपर्याप्ता अपि भवन्ति, करणापर्याप्तावस्थायामपि पर्याप्तनामकर्मोदयभावात्। तेनेहा--ऽपर्याप्तसत्कमन्तर्मुहूर्त्तं न त्यक्तम्।

एवमन्यग्रन्थेष्वपि। तदेवमत्र विवक्षाकृत एव भेदः, न पुनर्विरोधो मतान्तरं वेति।

एवमन्यत्र पर्याप्तसूक्ष्माद्युत्कृष्टभवस्थितिप्रसङ्गे तथा जघन्यभवस्थित्यादिप्रस्तावेऽपि विज्ञेयम्।

अधुना स्त्रीवेदस्योत्कृष्टभवस्थितिमाह "थीअ" इत्यादि, 'स्त्रियाः' स्त्रीवेदस्योत्कृष्टभवस्थितिः 'पञ्चपञ्चाशत्पल्याः' पञ्च-पञ्चाशत्पल्योपमाणि भवति, अपरिगृहीतैशानदेवलोकदेव्या उत्कृष्टायुषस्तावन्मात्रत्वात् ।

यदुक्तं श्रीप्रज्ञापनायाम्–"ईसाणे कप्पे अपरिग्गहियदेवीणं पुच्छा, गोयमा,! जहन्नेणं साइरेगं पलिओवमं उक्कोसेणं पणपन्नाइं पलिओवमाइं," (पद.४,सू० १०२/भा.१, पत्र० १७६-२) इति ।

तथा जीवाजीवाभिगमसूत्रे–"इत्थी णं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?, गोयमा! एगेणं आएसेणं ... . ——.... उक्कोसेणं पण्णपन्नं पलिओवमाइं"(प्रति.२,सू.४६/पत्र.५३) इति।

तथा चा-ऽस्य मलयगिरिवृत्तिः–'स्त्रिया भदन्त ! कियन्तं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता ?भगवानाह–गौतम !, 'एकेनादेशेन' आदेश-शब्द इह प्रकारवाची 'आदेशो त्ति पगारो' इति वचनात् एकेन प्रकारेण, - ....उत्कृष्टतः पञ्चपञ्चाशत्पल्योपमानि, एतदीशान-कल्पापरिगृहीतदेव्यपेक्षम् ।' (पत्र०५३-२) इति ।

तथा बृहत्संग्रहण्यामपि——"पणपन्ना य देवीणं ।।१७।।" (जिन.गा.१७।१३) इति । एवं तद्वृत्तावपि ।

तथा चन्द्रर्षिप्रणीतबृहत्संग्रहणी–"परिगहिआणियराणि य, सोहम्मीसाण देवीणं ।।११।। –....उक्कोसा । पलियाइं....... पंचवण्णा य ।।१२।।"इति । एवं तद्वृत्तावपि ।

तथैव पञ्चसंग्रहमलयगिरिसूरिवृत्तावपि–"ईशानकल्पे.... - ... - अपरिगृहीतदेवीनाम् ....——— उत्कृष्टा पञ्चपञ्चाशत्पल्यो-पमानि ।" (द्वा.२,गा०३५/भा. १,पत्र. ७२-१) इति ।

अथा–ऽवशिष्टानामपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यगादिसप्तत्रिंशद्भेदा-नामुत्कृष्टभवस्थितिं गाथाशेषेण प्राह–"सग." इत्यादि, 'सप्त-

त्रिंशतः' उक्तोद्धरितानामपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यगादीनां सप्तत्रिंशतः 'मुहूर्त्तान्तः' अन्तर्मुहुर्त्तं भवति, अपर्याप्तत्वेन वा सूक्ष्मत्वेन वा साधारणवनस्पतिकायत्वेन वा यथोक्तस्थितितोऽनधिकत्वात् ।

उक्तञ्च जीवसमासे-

"एएसिं च जहण्णं, उभयं साहार सव्वसुहुमाणं ।
अंतोमुहुत्तमाऊ, सव्वापज्जत्तयाणं च ॥२११॥" इति ।

शेषसप्तत्रिंशत्भेदाश्चेमे-अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग-ऽपर्याप्तमनुष्य - सूक्ष्मैकेन्द्रिय - पर्याप्तसूक्ष्मैकेन्द्रियाऽपर्याप्तसूक्ष्मैकेन्द्रिया ऽपर्याप्तबादरैकेन्द्रिया- ऽपर्याप्तद्वीन्द्रिया-ऽपर्याप्तत्रीन्द्रिया-ऽपर्याप्तचतुरिन्द्रियाऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रिय - सूक्ष्मपृथ्वीकाय -पर्याप्तसूक्ष्मपृथ्वीकाया-ऽपर्याप्तसूक्ष्मपृथ्वीकाया-ऽपर्याप्तबादरपृथिवीकाय-सूक्ष्माप्काय-पर्याप्तसूक्ष्माप्काया-ऽपर्याप्तसूक्ष्माप्काया-ऽपर्याप्तबादराप्काय-सूक्ष्मतेजस्काय-पर्याप्तसूक्ष्मतेजस्काया-ऽपर्याप्तसूक्ष्मतेजस्काया-ऽपर्याप्तबादरतेजस्काय-सूक्ष्मवायुकाय-पर्याप्तसूक्ष्मवायुकाया ऽपर्याप्तसूक्ष्मवायुकाया-ऽपर्याप्तबादरवायुकाय-साधारणशरीरवनस्पतिकाय-सूक्ष्मसाधारणशरीरवनस्पतिकाय - पर्याप्तसूक्ष्मसाधारणशरीरवनस्पतिकाया - ऽपर्याप्तसूक्ष्मसाधारणशरीरवनस्पतिकाय - बादरसाधारणशरीरवनस्पतिकाय - पर्याप्तबादरसाधारणशरीरवनस्पतिकाया - ऽपर्याप्तबादरसाधारणशरीरवनस्पतिकाया-ऽपर्याप्तप्रत्येकशरीरवनस्पतिकाया-ऽपर्याप्तत्रसकाया-ऽपर्याप्तसंज्ञि-ऽपर्याप्तासंज्ञिरूपाः॥ ११॥

॥ इति मार्गणानामुत्कृष्टभवस्थितिः ॥

॥ अथ सप्तदशाधिकशतमार्गणानां जघन्यभवस्थितिः ॥

साम्प्रतं गाथाचतुष्केण सर्वेषां सप्तदशोत्तरशतमार्गणाभेदानां जघन्यभवस्थितिं प्रतिपादयन्नादौ तावदेकया पथ्यार्यया सर्वनरकभेदानामष्टानां सुरभेदत्रिकस्य चेत्येकादशभेदानां जघन्यभवस्थितिं प्रकटयति—

हस्सा णिरयऽज्जणिरय-सुर-भवणदुगाण दससहस्ससमा ।
दुइआइगणिरयाणं,सा पढमाइणिरयाण जा जेट्ठा ॥१२॥(गी.)
पलियस्स अट्ठभागो, जोइसिअस्स पलिओवमं णेया
सोहम्मसुरस्स भवे, ईसाणस्सऽब्भहियपल्लं ॥१३॥
दोण्णि हवेज्जा जलही, सणंकुमारस्स दोण्णि अब्भहिया ।
माहेंदस्स हवेज्जा, सत्त भवे बम्भदेवस्स ॥१४॥
लंतगदेवाईणं, सा बम्हसुराइगाण जा जेट्ठा ।
पज्जत्तजोणिणीपुम-थीणंतमुहुत्तामियरखुड्डभवो॥१५॥(गीतिः)

(प्रे०) "हस्सा" इत्यादि, 'निरया-ऽऽद्यनिरय-सुर-भवनद्विकानाम्' निरयस्य=नरकगतिसामान्यस्या-ऽऽद्यनिरयस्य=रत्नप्रभाभिधा-ऽऽद्यनरकस्य सुरस्य=देवगतिसामान्यस्य भवनद्विकस्य='देवो देवदत्तः' इति न्यायेन भवनशब्देन भवनपतेर्ग्रहणाद् भवनपतिसुरस्य व्यन्तरसुरस्य प्रत्येकं 'ह्रस्वा' जघन्या भवस्थितिः 'दशसहस्रसमाः' दशसहस्रवर्षाणि भवति, तथैवाऽऽगमोपलब्धाद् ।

उक्तञ्च प्रज्ञापनायां चतुर्थे स्थितिपदे—

"नेरइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पन्नत्ता? गोयमा! जहन्नेणं दसवाससहस्साइं, ...
रयणप्पभापुढविनेरइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पन्नत्ता? गोयमा! जहन्नेणं दसवाससहस्साइं, ...
.... देवाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पन्नता? गोयमा! जहन्नेणं दसवाससहस्साइं, ...
भवणवासीणं देवाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पन्नत्ता? गोयमा! जहन्नेणं दसवाससहस्साइं, ...
वाणमंतराण देवाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पन्नत्ता? गोयमा! जहन्नेणं दसवाससहस्साइं" (सू.९४-९५-१००/पत्र०१६८/२-१७०/२)इति ।

एवं जीवाजीवाभिगमसूत्र-तत्त्वार्थसूत्र-बृहत्संग्रहणी-जीवसमासादिग्रन्थेष्वपि ।

तत्र नरकगतिसामान्यस्य प्रथमनरकापेक्षया सुरसामान्यस्य भवनपतिसुर-व्यन्तरसुरापेक्षया प्रकृतभवस्थितिर्बोध्या ।

उक्ता च प्रथमनरक-भवनपति-व्यन्तराणां यथोक्तभवस्थितिर्बृहत्संग्रहण्याम्—

".....कणिट्ठा दसवाससहस्स पढमाए ॥२०२॥"
..... "दसवाससहस्स रयणाए ॥२३४॥(२२०)
..... दस भवणवणयराणं वाससहस्सा ठिई जहन्नेणं ।
.....॥४॥" इति ।

एवं तत्त्वार्थसूत्र-जीवसमास-पञ्चसंग्रहमलयगिरिसूरिवृत्त्यादिष्वपि ।

इयञ्च जघन्यभवस्थितिरपि नरकगतिसामान्यादीनां सामान्येन प्रतिपादिता, न पुनर्विशेषेण प्रतिप्रस्तटादिभेदेनेह ग्रन्थगौरवादिकारणेन गृहीता, सा ऽपि बृहत्संग्रहणीप्रमुखग्रन्थान्तरतो विस्तरार्थिना जिज्ञासुना-ऽवगन्तव्या । एवमुत्तरत्रा-ऽपि ।

अथ द्वितीयादिशेषनरकभेदषट्कस्य जघन्यभवस्थितिं गाथोत्तरार्धेनाऽऽह-"दुहआइग०" इत्यादि, 'द्वितीयादिकनिरयाणं' शर्कराप्रभादिपृथ्वीगतानां षण्णां नारकभेदानां 'सा' प्रकृतत्वाज्जघन्यभवस्थितिः सा भवति, सा पुनः का ? इत्याह-"पढमाइ." इत्यादि, 'प्रथमादिनिरयाणां रत्नप्रभादिपृथ्वीस्थानां प्रथमादीनां षण्णां नैरयिकभेदानां या प्राक् "पढमाइगणिरयाणं, कमसो एगो य तिण्णि सत्त दस। सत्तरह य बावीसा, तेत्तीसा सागरा णेया ॥३॥" इति गाथया 'ज्येष्ठा' उत्कृष्टा भवस्थितिर्दर्शितेति ।

इदमुक्तं भवति—शर्कराप्रभापृथिवीनैरयिकाणां जघन्यभवस्थितिरेकं सागरोपमम् , वालुकाप्रभानरकपृथिवीनारकाणां त्रीणि सागरोपमाणि, पङ्कप्रभानरकपृथिवीनिरयाणां सप्त सागरोपमाणि, धूमप्रभापृथिवीनैरयिकाणां दश सागरोपमाणि तमःप्रभानारकाणां सप्तदश सागरोपमाणि, तमस्तमःप्रभायाश्च द्वाविंशतिः सागरोपमाणि भवति। उक्तञ्च त्रैलोक्यदीपिकायाम्—

'जा पढमाए जिट्ठा,सा बीआए कणिट्ठिआ भणिआ।
तरतमजोगा एसो,दसवाससहस्स रयणाए।।२३४।।"(२२०) इति।

तथा जीवसमासे-ऽपि-(गा.२०३)"

"पढमादि जमुक्कोसं, बीयादिसु सा जहण्णया होइ।" इति।

एवमन्यत्र प्रज्ञापना-तद्वृत्ति-जीवाजीवाभिगम-तद्वृत्ति-तत्त्वार्थसूत्र-पञ्चसंग्रहमलयगिरिसूरिवृत्त्यादिष्वपि ।।१२।।

इदानीं ज्योतिष्कसुरस्य प्रकृतमाह-"पलियस्स" इत्यादि, 'ज्योतिष्कस्य' ज्योतिष्कदेवस्य जघन्यभवस्थितिः 'पल्यस्य' पल्योपमस्य 'अष्टभागः' अष्टमश्चा-ऽसौ भागश्चाऽष्टभागः, पृषोदरादित्वादिह पूरणप्रत्ययलोपः, पल्योपमाष्टभागप्रमाणा भवति।

उक्तञ्च जीवसमासे-"पल्लट्ठभाग पल्लं च साहियं जोइसे जहण्णियरं।"(गा.२०५/पत्र.२०१) इति।

एवं प्रज्ञापनाद्यन्यग्रन्थेष्वपि।

एषा-ऽपि तारकदेवतापेक्षया बोध्या, तारकदेव-देवीनां जघन्यायुष्कस्य तथात्वात्।

उक्तञ्च पञ्चसंग्रहमलयगिरिसूरिवृत्तिसाक्षिणि ग्रन्थे-"पलिओवमट्ठभागो,तारयदेवाण तह य देवीणं। होइ जहन्नं आउं ।।" (द्वा० २, गा० ३५/भा० १, पत्र० ७२-१) इति।

एवमेव जीवसमासवृत्तिसाक्षिण्यपि ।

इदानीं सौधर्मदेवस्या-ऽऽह–"पलिओवमं" इत्यादि, 'सौधर्मसुरस्य' प्रथमकल्पोत्पन्नदेवस्य जघन्यभवस्थितिः पल्योपमं ज्ञेया, तथात्वात् ।

उक्तञ्च श्रीप्रज्ञापनायां चतुर्थे स्थितिपदे–

"सोहम्मे णं भंते ! कप्पे देवाणं केवइयं कालं ठिई पन्नत्ता ?, गोयमा ! जहन्नेणं पलिओवमं" (सू०१०२/पत्र०१७६-१) इति ।

एवं ग्रन्थान्तरेष्वपि ।

अथैशानदेवस्या-ऽऽह–"भवे" इत्यादि, 'ऐशानस्य' ऐशानसुरस्य जघन्यभवस्थितिः 'अभ्यधिकपल्यं' सातिरेकं पल्योपमं भवेत्, तज्जघन्यायुषस्तावन्मात्रत्वात् । उक्तञ्च चतुर्थपदे–

"ईसाणकप्पे देवाणं पुच्छा, गोयमा ! जहन्नेणं साइरेगं पलिओवमं" (सू०१०२/पत्र०१७६-२) इति ।

एवमन्यग्रन्थेष्वपि ॥१३॥

साम्प्रतं सनत्कुमारदेवस्या-ऽऽह–"दोण्णि" इत्यादि, 'सनत्कुमारस्य' सनत्कुमारसंज्ञकतृतीयकल्पवासिदेवस्य जघन्यभवस्थितिः 'द्वौ' द्विसङ्ख्याकौ 'जलधी' सागरोपमौ भवति, जघन्यायुष एतावन्मात्रत्वात् । यदुक्तं श्रीश्यामाचार्यपादैः– "सणंकुमारे कप्पे देवाणं पुच्छा, गोयमा ! जहन्नेणं दो सागरोवमाइं" (प्रज्ञा. प. ४, सू०१०२/ पत्र. १७६-२।१७७-१) इति । तथैव ग्रन्थान्तरेष्वपि ।

अथ माहेन्द्रकल्पदेवस्या-ऽऽह–"दोण्णि" इत्यादि, 'माहेन्द्रस्य द्वावभ्यधिकौ' माहेन्द्रदेवलोकवर्तिदेवस्य जघन्यभवस्थितिः साधिकौ द्वौ सागरोपमौ भवति, जघन्यायुषस्तावन्मात्रत्वात् ।

उक्तञ्च प्रज्ञापनाचतुर्थपदे–"माहिन्दे कप्पे देवाणं पुच्छा, गोयमा ! जहण्णेणं साइरेगाइं दो सागरोवमाइं" (सू०१०२/ पत्र०१७७-१)" इति ।

तथैवा-ऽन्यशास्त्रेष्वपि ।

अधुना ब्रह्मदेवलोकवासिदेवस्या-ऽऽह-"सत्त" इत्यादि, 'ब्रह्मदेवस्य' "समुदायेषु प्रवृत्ताः शब्दास्तदेकदेशेष्वपि व्यवह्रियन्ते" इति न्यायेन ब्रह्मलोककल्पदेवस्य जघन्यभवस्थितिः सप्त सागरोपमा भवति, जघन्यतस्तदायुषस्तथात्वात् । तथा चाह प्रज्ञापनाकारः—

"बंभलोए कप्पे देवाणं पुच्छा, गोयमा ! जहन्नेणं सत्त सागरोवमाइं" (प्रज्ञा.प.४.सू.१०२/पत्र०१७७-१) इति ।

एवं शास्त्रान्तरेष्वपि ॥१४॥

सम्प्रति लान्तकसुरादीनां जघन्यभवस्थितिं गाथापूर्वार्द्धेना-ऽऽह-"लंतग०" इत्यादि, 'लान्तकदेवादीनां' "व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्नहि संदेहादलक्षणा" इति न्यायमाश्रित्य सर्वार्थसिद्धदेवस्य जघन्यभवस्थितेरभावात्तद्वर्जानां लान्तकसुरप्रमुखचतुरनुत्तरसुरपर्यवसानानां देवानां जघन्यभवस्थितिर्यथाक्रमं सा भवति, या पूर्वं "सोहम्माईण कमा" (गा० ६) इत्यादिषष्ठसप्तम(६ ७) गाथाद्वयेन 'ब्रह्मसुरादिकानां' ब्रह्मदेवकल्पवासिदेवादीनां 'ज्येष्ठा' उत्कृष्टा भवस्थितिः प्रतिपादिता ।

प्रतिपादितं च जीवसमासे—

"हेट्ठिल्लुक्कोसठिई, सक्काईणं जहण्णा सा ॥२०५॥" इति ।

इदमुक्तं भवति-लान्तकदेवस्य जघन्यभवस्थितिर्दश सागरोपमाः, महाशुक्रत्रिदशस्य चतुर्दश सागरोपमाः, सहस्रारसुरस्य सप्तदश सागरोपमाः, आनतसुरस्या-ऽष्टादश सागरोपमाः प्राणतगीर्वाणस्यैकोनविंशतिः सागरोपमाः, आरणसुधाभुजो विंशतिः सागरोपमाः, अच्युतदेवस्यैकविंशतिः सागरोपमाः, प्रथमग्रैवेयकविबुधस्य द्वाविंशतिः सागरोपमाः, द्वितीयग्रैवेयकसुमनसस्त्रयोविंशतिः सागरोपमाः तृतीयग्रैवेयकामरस्य चतुर्विंशतिः सागरोपमाः,

चतुर्थग्रैवेयकसुधाशिनः पञ्चविंशतिः सागरोपमाः, पञ्चमग्रैवेयकनिर्जरस्य षड्विंशतिः सागरोपमाः, षष्ठग्रैवेयकाऽमर्त्यस्य सप्तविंशतिः सागरोपमाः, सप्तमग्रैवेयकदेवस्या-ऽष्टाविंशतिः सागरोपमाः, अष्टमग्रैवेयकसुपर्वण एकोनत्रिंशत्सागरोपमाः, नवमग्रैवेयकनाकिनस्त्रिंशत्सागरोपमाः, विजय-वैजयन्त-जयन्ता-ऽपराजितगीर्वाणानां प्रत्येकमेकत्रिंशत्सागरोपमाणि भवति, तेषां जघन्यायुःप्रमाणस्यैतावन्मात्रत्वात्। यदुक्तं प्रज्ञापनायाम्—"लंतए कप्पे देवाणं पुच्छा गोयमा ! जहन्नेणं दस सागरोवमाइं, ... महासुक्के कप्पे देवाणं पुच्छा, गोयमा ! जहन्नेणं चउदस सागरोवमाइं,..... ..... सहस्सारे कप्पे देवाणं पुच्छा, गोयमा जहन्नेणं सत्तर सागरोवमाइं, ... आणए कप्पे देवाणं पुच्छा, गोयमा ! जहन्नेणं अट्ठारस सागरोवमाइं, ... पाणए कप्पे देवाणं पुच्छा, गोयमा ! जहन्नेणं एगूणवीसं सागरोवमाइं ..... आरणे कप्पे देवाणं पुच्छा गोयमा ! जहन्नेणं वीसं सागरोवमाइं अच्चुए कप्पे देवाणं पुच्छा, गोयमा ! जहन्नेणं एगवीसं सागरोवमाइं हेट्ठिमहेट्ठिमगेविज्जगदेवाणं पुच्छा, गोयमा ! जहन्नेणं बावीसं सागरोवमाइं ..... हेट्ठिममज्झिमगेविज्जगदेवाणं पुच्छा, गोयमा ! जहन्नेणं तेवीसं सागरोवमाइं, ... हेट्ठिमउवरिमगेविज्जगदेवाणं पुच्छा, गोयमा ! जहन्नेणं चउवीसं सागरोवमाइं ..... मज्झिमहेट्ठिमगेविज्जगदेवाणं पुच्छा, गोयमा ! जहन्नेणं पणवीसं सागरोवमाइं मज्झिममज्झिमगेविज्जगदेवाणं पुच्छा गोयमा ! जहन्नेणं छव्वीसं सागरोवमाइं, मज्झिमउवरिमगेविज्जगदेवाणं पुच्छा गोयमा ! जहन्नेणं सत्तावीसं सागरोवमाइं, उवरिमहेट्ठिमगेविज्जगदेवाणं पुच्छा, गोयमा ! जहन्नेण अट्ठावीसं सागरोवमाइं ..... उवरिममज्झिमगेविज्जगदेवाणं पुच्छा, गोयमा! जहन्नेणं एगूणतीसं सागरोवमाइं, उवरिमउवरिमगेविज्जग-

देवाणं पुच्छा, गोयमा ! जहन्नेणं तीसं सागरोवमाइं.... विजयवेजयंतजयंतअपराजितेसु णं भंते! देवाणं केवइयं कालं ठिई पन्नता?, गोयमा ! जहन्नेणं एकतीसं सागरोवमाइं" (सू०१०२/पत्र० १७७-१७८) इति।

एवं जीवाजीवाभिगम-तद्वृत्त्यादिष्वपि।

समवायाङ्गे पुनर्विजयादिचतुरनुत्तरनाकिनां द्वात्रिंशत्सागरोपमप्रमाणा जघन्यभवस्थितिरभिहिता।

तथा च तद्ग्रन्थः—(सू० १५१/पत्र०१४०-२)

"विजयवेजयंतजयंतअपराजियाण देवाणं केवइयं कालं ठिई पन्नता?,गोयमा! जहन्नेणं बतीसं सागरोवमाइं" इति।

अथ शेषगाथार्द्धेन शेषभेदानां जघन्यभवस्थितिं दर्शयितुकाम आदौ तावत्पर्याप्तभेदानां योनिमत्योर्द्विवेदयोश्चा-ऽऽह—"पज्जत्त." इत्यादि, 'पर्याप्तयोनिमतीपुंस्त्रीणां' पर्याप्तानां=पर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यक्-पर्याप्तमनुष्यरूपगतिभेदद्वय- पर्याप्तसूक्ष्मैकेन्द्रिय-पर्याप्तबादरैकेन्द्रिय-पर्याप्तद्वीन्द्रिय-पर्याप्तत्रीन्द्रिय-पर्याप्तचतुरिन्द्रिय-पर्याप्तपञ्चेन्द्रियलक्षणेन्द्रियभेदषट्क - पर्याप्तसूक्ष्मपृथिवीकाय - पर्याप्तबादरपृथ्वीकाय-पर्याप्तसूक्ष्माप्काय-पर्याप्तबादराप्काय-पर्याप्तसूक्ष्माग्निकाय-पर्याप्तबादराग्निकाय -पर्याप्तसूक्ष्मवायुकाय-पर्याप्तबादरवायुकाय - पर्याप्तसूक्ष्मसाधारणशरीरवनस्पतिकाय - पर्याप्तबादरसाधारणशरीरवनस्पतिकाय-पर्याप्तप्रत्येकशरीरवनस्पतिकाय-पर्याप्तत्रसकायरूपकायभेदद्वादशक - पर्याप्तसंज्ञि - पर्याप्ताऽसंज्ञिलक्षणानां द्वाविंशतेः पर्याप्तभेदानां योनिमत्योः=पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिमतीमनुष्ययोनिमत्याख्ययोः पुंस्त्रियोः=पुरुषवेदस्य स्त्रीवेदस्य चेति षड्विंशतेर्भेदानां प्रत्येकं जघन्यभवस्थितिः'अन्तर्मुहूर्त्तम्'अन्तर्मुहूर्तमाना भवति,पर्याप्त-योनिमती-स्त्री-पुंवेदानां ततो न्यूनायुषो-ऽसंभवे सति जघन्यायुषो यथोक्तप्रमाणत्वात्।

यदुक्तं प्रज्ञापनायाम्–पज्जत्ताए णं पुच्छा, गो० ! ज० अं०..." (सू० २४८/पत्र० ३६३-२) तिरिक्खजोणिणी णं भंते ! तिरिक्खजोणित्ति कालओ केवचिरं होइ ?, गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं मणुस्सी वि एवं चेव । (सू०२३२/पत्र. ३७४-१) इति ।

एवमेव जीवाजीवाभिगमे तथा-ऽन्यत्रा-ऽपि।

तथा जीवाजीवाभिगमे स्त्रीपुंसोर्जघन्यभवस्थितिः—"इत्थी णं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?, गोयमा ! एगेणं आएसेणं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं.... ... पुरिसस्स णं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?, गोयमा ! जह० अंतोमु०" (सू०४६-५३/पत्र० ५३/१-६५/२) इति।

अथोक्तशेषमार्गणानामाह-"इयर०" इत्यादि, 'इतरक्षुल्लकभवः' इतरासाम्=उक्तोद्धरितानां तिर्यग्गत्योघादित्रिपञ्चाशन्मार्गणानां जघन्यभवस्थितिः क्षुल्लकभवः=क्षुल्लकभवप्रमाणा भवति, अन्यतरापर्याप्तजीवभेदस्य प्रवेशेन तथालाभात् । शेषमार्गणाश्चेमाः-तिर्यग्गत्योघ-पञ्चेन्द्रियतिर्यगऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यग् - मनुष्यौघा-ऽपर्याप्तमनुष्यरूपगतिभेदपञ्चकै-केन्द्रियौघ - सूक्ष्मैकेन्द्रियाऽपर्याप्तसूक्ष्मैकेन्द्रिय-बादरैकेन्द्रिया-ऽपर्याप्तबादरैकेन्द्रिय -द्वीन्द्रियौघा-ऽपर्याप्तद्वीन्द्रिय -त्रीन्द्रियौघा - ऽपर्याप्तत्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियौघाऽपर्याप्तचतुरिन्द्रिय - पञ्चेन्द्रियौघा - ऽपर्याप्तपञ्चेन्द्रियरूपेन्द्रियभेदत्रयोदशकौघ-बादरा-ऽपर्याप्तबादर-सूक्ष्मा-ऽपर्याप्तसूक्ष्मभेदभिन्नपृथ्वीकायपञ्चका—ऽकायपञ्चक-तेजस्कायपञ्चक-वायुकायपञ्चक—साधारणशरीरवनस्पतिकायपञ्चक-वनस्पतिकायौघ-प्रत्येकवनस्पतिकाया-ऽपर्याप्तप्रत्येकवनस्पतिकाय-त्रसकायौघा-ऽपर्याप्तत्रसकायरूपकायभेदत्रिंशत्क-नपुंसकवेद - संज्ञि-ऽपर्याप्तसंज्ञि -ऽसंज्ञि-ऽपर्याप्तासंज्ञिरूपसंज्ञिभेदचतुष्कलक्षणास्त्रिपञ्चाशन्मार्गणाः ॥१२—१५॥

॥ इति भवस्थितिः ॥

साम्प्रतं प्रकृतग्रन्थसमाप्तिसूचिकां ग्रन्थोपसंहारात्मिकामेकां पद्यार्यामाह-

सिरिवीरसेहरविजय-मुणिणा सिरिपेमसूरिसंणिज्झे ।
देवगुरुपहावाओ, भवट्ठिई सुत्तिआ एसा ॥१६॥

(प्रे०) "सिरि०" इत्यादि, 'श्रीप्रेमसूरिसान्निध्ये' श्रिया= रत्नत्रयीप्रमुखलक्ष्म्या सहिताश्च ते प्रेमसूरयः प्रगुरुगुरवो गच्छाधिपाः श्रीप्रेमसूरयः, तेषां सान्निध्ये श्रीप्रेमसूरिसान्निध्ये=एतावता-ऽस्माकं प्रपितामहगुरुपादानां पुण्यनामधेयानामाचार्यभगवतां श्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वराणां परमपवित्रसान्निध्यवर्तिना 'श्रीवीरशेखरविजयमुनिना' श्रिया=ज्ञानादिलक्ष्म्या युतश्चासौ वीरशेखरविजयः =तत्संज्ञकस्तच्चरणोपासकः क्षुल्लकः साधुः श्रीवीरशेखरविजयः स चासौ मुनिः=श्रमणः श्रीवीरशेखरविजयमुनिः,तेन श्रीवीरशेखरविजयमुनिना 'देवगुरुप्रभावात्' देवश्चाऽर्हत्सिद्धरूपो गुरुश्चाऽऽचार्यादिस्वरूपो गणधरादिश्रीमद्विजयप्रेमसूरीश्वरप्रभृतिस्वगुर्ववसानो वा देवगुरू तयोः प्रभावात्=माहात्म्यात् देवगुरुप्रभावात्= देवगुर्वनुग्रहात् 'एषा' अनन्तरभणिता भवस्थितिः प्राग्वर्णितार्था 'सूत्रिता' रचिता ॥१६॥

इदानीं ग्रन्थकारः स्वस्य छाद्मस्थ्येन मन्दमत्यादिना च किमपि स्खलनं स्यात्तद् दूरीकर्तुमनाः संविज्ञेषु बहुश्रुतेषु बहुमानगर्भां विज्ञप्तिमेकया गाथया वितन्वन्ना-ऽऽह—

मंदमइअणुवओगा-इहेउणा किं पि आगमविरुद्धं ।
एत्थ सिआ करिअ किवं,मइ तं सोहन्तु सुअणिहिणो॥१७॥

॥ इति मूलग्रन्थः समाप्तः ॥

(प्रे०) "मंदमइ" इत्यादि, 'अत्र' अस्मिन् प्रस्तुते भवस्थिति-संज्ञके प्रकरणे यत्तदोर्नित्यसम्बन्धाद् यच्छब्द आक्षिप्यते यत्किमपि 'मन्दमत्यनुपयोगादिहेतुना' मन्दा=जाड्या चासौ मतिः=बुद्धिर्मन्द-मतिः=अप्रगल्भशेमुषी न उपयोगः=चित्तैकाग्रता अनुपयोगः= असावधानता, मन्दमतिश्चा-ऽनुपयोगश्च मन्दमत्यनुपयोगौ तौ आदौ येषाम्, ते मन्दमत्यनुपयोगादयः, अत्रा-ऽऽदिपदेन छाद्मस्थ्य-दृष्टि-दोषादयो ज्ञेयाः, त एव हेतुः, मन्दमत्यनुपयोगादिहेतुस्तेन मन्दमत्य-नुपयोगादिहेतुना-ऽऽगमविरुद्धं=शास्त्रबाह्यं स्यात्तद् मयि ममो-परि कृपां=प्रसादं 'कृत्वा' विधाय श्रुतनिधयः=श्रुतागमशालिनः शोधयन्तु=अशुद्धपदनिराकरणेन शुद्धपदानयनेन शुद्धिं कुर्वन्तु ।१७।

प्रेमप्रभाख्यवृत्त्या, विराजिता प्रेमसूरिगणे ।
मुनिवीरशेखरेण, स्वोपज्ञभवस्थितिश्चैषा ॥१॥
कुशलं तया यदाप्तं, तेन कुशलमस्तु विश्वविश्वस्य ।
यत्किमपीह क्षुण्णं, स्यात्तच्छोध्यं बुधैर्विधाय कृपाम् ॥२॥

॥ इति प्रेमप्रभावृत्तिः समाप्ता ॥

इति

स्वोपज्ञप्रेमप्रभावृत्तिपरिकलिता

मुनिश्रीवीरशेखरविजयसूत्रिता

भवस्थितिः

समाप्ता

इति

मुनिश्रीवीरशेखरविजयसूत्रिता

स्वोपज्ञ-

प्रेमप्रभावृत्तिपरिकलिता

भवस्थितिः

समाप्ता

अथ

भवस्थितिसत्कानि दश परिशिष्टानि

॥ अथ प्रथमं मूल-

खविअभवठिइसिरिमुहरि–पासं पणमिअ हियत्थमत्तसुया ।
वोच्छं भवठिइमोहे, गइइंदियकायवेअसण्णीसुं ॥१॥ (गीतिः)

तेत्तीसुदही जेट्ठा, भवे भवठिई लहू य खुड्डभवो ।
जेट्ठोघव्वऽत्थि णिरय-सुरदुपणिंदितसवेअसण्णीणं ॥२॥ (गीतिः)
पढमाइगणिरयाणं, कमसो एगो य तिण्णि सत्त दस ।
सत्तरह य बावीसा, तेत्तीसा सागरा णेया ॥३॥
तिरियस्स पणिंदितिरिय-णरतप्पज्जत्तजोणिणीणं च ।
तिण्णि पलिओवमाणि अ-मणतप्पज्जाण पुव्वकोडी उ ॥४॥(गी.)
भवणस्स साहियुदही, पल्लं वंतरसुरस्स विण्णेया ।
पलिओवममब्भहियं, जोइसदेवस्स णायव्वा ॥५॥
सोहम्माईण कमा, अयरा दो साहिया दुदे सत्त ।
अब्भहिया सत्त य दस, चउदस सत्तरह णायव्वा ॥६॥
एत्तो एगेगहिया, णायव्वा जाव एगतीसुदही ।
उवरिमगेविज्जस्स उ, तेत्तीसाऽणुत्तराण भवे ॥७॥
एगिंदिय-पुहवीणं, वरिससहस्साणि होइ बावीसा ।
सा चेव होइ तेसिं, बायर-बायरसमत्ताणं ॥८॥
बेइंदियाइगाणं, कमसो बारह समा अउणवण्णा ।
दिवसा तह छम्मासा, एवं तेसिं समत्ताणं ॥९॥

परिशिष्टम् ॥

गाथाः

दगवाऊगं कमसो, वाससहस्साणि सत्त तिण्णि भवे ।
तिदिणा-ऽग्गिस्सेवं सिं, बायर-बायरसमत्ताणं ॥१०॥

वासाऽत्थि दससहस्सा, वणपत्तेअवणतस्समत्ताणं ।
थीअ पणवण्णपलिआ, सगतीसाए मुहुत्तंतो ॥११॥

हस्सा णिरयऽज्जणिरय-सुर-भवणदुगाण दससहस्ससमा । (गी.)
दुइआइगणिरयाणं, सा पढमाइणिरयाण जा जेट्ठा ॥१२॥

पलियस्स अट्ठभागो, जोइसिअस्स पलिओवमं णेया ।
सोहम्मसुरस्स भवे, ईसाणस्सऽब्भहियपल्लं ॥१३॥

दोण्णि हवेजा जलही, सणंकुमारस्स दोण्णि अब्भहिया ।
माहेंदस्स हवेज्जा, सत्त भवे बम्भदेवस्स ॥१४॥

लंतगदेवाईणं, सा बम्हसुराइगाण जा जेट्ठा ।
पज्जत्तजोणिणीपुम-थीणंतमुहुत्तमियरखुड्डभवो॥१५॥(गीतिः)

सिरिवीरसेहरविजय-मुणिणा सिरिपेममूरिसंणिज्झे ।
देवगुरुपहावाओ, भवट्ठिई सुत्तिआ एसा ॥१६॥

मंदमइअणुवओगा-इहेउणा किं पि आगमविरुद्धं ।
एत्थ सिआ करिअ किंवं, मइ तं सोहन्तु सुअणिहिणो ॥१७॥

॥ इति मुनिश्रीवीरशेखरविजयसूत्रिता भवस्थितिः ॥

॥ अथ द्वितीयं परिशिष्टम् ॥

प्रकारादिक्रमेण गाथाद्यांशाः

अनु०	गाथाद्यांशाः	गाथाङ्काः	पृष्ठाङ्काः
	ए		
१	एगिंदिय-पुहवीणं,	॥८॥	१३
२	एत्तो एगेगहिया,	॥७॥	८
	ख		
३	खविअभवठिइसिरिमुहरि.	॥१॥	१
	त		
४	तिरियस्स पणिंदितिरिय.	॥४॥	६
५	तेत्तीसुदही जेट्ठा,	॥२॥	३
	द		
६	दगबाऊणं कमसो,	॥१०॥	१५
७	दोण्णि हवेज्जा जलही,	॥१४॥	२२
	प		
८	पढमाइगणिरयाणं,	॥३॥	४
९	पलियस्स अट्ठभागो,	॥१३॥	२२
	ब		
१०	बेइंदियाइगाणं,	॥९॥	१४
	भ		
११	भवणस्स साहियुदही,	॥५॥	८
	म		
१२	मंदमइअणुवओगा.	॥१७॥	३०
	ल		
१३	लंतगदेवाईणं,	॥१५॥	२२
	व		
१४	वासा-ऽत्थि दससहस्सा,	॥११॥	१७
	स		
१५	सिरिवीरसेहरविजय.	॥१६॥	३०
१६	सोहम्माईण कमा	॥६॥	८
	ह		
१७	हस्सा णिरयज्जणिरय.	॥१२॥	२२

॥ अथ तृतीयं परिशिष्टम् ॥

साक्षिग्रन्थाः

अकारादिक्रमेण भवस्थितिग्रन्थवृत्तिगतानां साक्षिग्रन्थानां नामसूचिः-

अनु० ग्रन्थनाम पृष्ठाङ्काः

१ चतुर्थपदम् (प्रज्ञा०)—२५
२ जीवसमासः-५, ६, ८, ६[२], १०, १२, १४, २१, २४[२], २६
३ जीवसमासमलधारिहेमचन्द्रसूरिवृत्तिः-७,
४ जीवसमासवृत्तिः-१८,
५ जीवाजीवाभिगमसूत्रम्-६, ७, १३, १४, १६, १७, २०, २६,
६ जीवाजीवाभिगमसूत्रमलयगिरिसूरिवृत्तिः-२०,
७ तत्त्वार्थसूत्रभाष्यम्-१२,
८ तत्त्वार्थसूत्रम्-५, १२,
९ त्रैलोक्यदीपिका (बृहत्संग्रहणी)-२४,

अनु० ग्रन्थनाम पृष्ठाङ्काः

१० पञ्चसंग्रहमलयगिरिसूरिवृत्तिः-७, १४, १५, १७, २०, २४,
११ पञ्चसंग्रहवृत्तिः-१८,
१२ प्रज्ञापनासूत्रम्-७, ८, ६[३], १२ १३[२], १४, १५, १६[२], १८[२], २०, २२, २५, २७, २६
१३ बृहत्संग्रहणी-१०, ११, २०, २३
१४ बृहत्संग्रहणी(चन्द्रर्षिप्रणीता)-६, १८, २०, २३,
१५ भवस्थिति(प्रकृत) ग्रन्थः-२३, २६,
१६ यदुक्तम्-९,
१७ वचनम्-६,
१८ समवायाङ्गम्—२८,

॥ अथ चतुर्थं परिशिष्टम् ॥

साक्षिग्रन्थकाराः

अकारादिक्रमेण भवस्थिति-ग्रन्थवृत्तिगतानां साक्षिग्रन्थकृतां नामसूचिः-

अनु० ग्रन्थकारनाम पृष्ठाङ्काः

१ चन्द्रर्षिः—२०,
२ प्रज्ञापनाकारः—२६,
३ मलधारिहेमचन्द्रसूरिः-७,
४ मलयगिरिसूरिः-७, १४, २०[२],
५ वाचकमुख्यः-५,
६ श्यामाचार्यः—२५,

॥ अथ पञ्चमं परिशिष्टम् ॥

प्रतिदिष्टग्रन्थाः

अकारादिक्रमेण भवस्थितिग्रन्थवृत्तिगतानामतिदिष्टग्रन्थानां नामसूचिः-

अनु०	ग्रन्थनाम	पृष्ठाङ्काः
१	अन्यग्रन्थः—	१८,१९,२४,२५,
२	अन्यत्र—	६[3],१३,१५,१७,२४,२९
३	अन्यशास्त्रम् —	२६,
४	ग्रन्थान्तरम् —	६,२३,२५,[2]
५	जीवसमासः —	२३,[2]
६	जीवसमासवृत्तिः	२५,
७	जीवाजीवाभिगमसूत्रम्-	७, १८,१९,[2]२३, २४,२८,२९,
८	जीवाजीवाभिगमसूत्रवृत्तिः—	२४,२८,
९	तत्त्वार्थसूत्रम् —	१२,२३[2],२४,
१०	पञ्चसंग्रहः—	५,
११	पञ्चसंग्रहमलयगिरिसूरिवृत्तिः—	२३,२४,
१२	प्रज्ञापनासूत्रम् —	८,१०,१२[2],१३,१६,१८,१९,२४[2],
१३	प्रज्ञापनासूत्रवृत्तिः—	२५,
१४	बृहत्संग्रहणी-	५ १२, २३[2]
१५	बृहत्संग्रहणीवृत्तिः—	२०[2]
१६	शास्त्रम् -	९,
१७	शास्त्रान्तरम् —	२६
१८	समवायाङ्गम् —	२८

॥ अथ षष्ठं परिशिष्टम् ॥

प्रतिदिष्टग्रन्थकाराः

अकारादिक्रमेण भवस्थितिग्रन्थवृत्तिगतानामतिदिष्टग्रन्थकृतां नामसूचिः-

अनु०	ग्रन्थकारनाम	पृष्ठाङ्काः
१	तत्त्वार्थसूत्रकारः—	१२
२	तत्त्वार्थसूत्रभाष्यकारः—	१२

॥ अथ सप्तमं परिशिष्टम् ॥

व्याकरणसूत्राणि

अकारादिक्रमेण भवस्थितिग्रन्थवृत्तिगतानां व्याकरणसूत्राणां सूचिः-

अनु०	व्याकरणसूत्रम्	पृष्ठाङ्काः
१	गम्ययपः कर्माधारे (सि० २-२-७४)	२
२	ते लुग्वा (सि.-३-२-१०८)	८
३	द्विवचनस्य बहुवचनम् (सि. ८-३-१३०)	८
४	प्राक्काले (सि०५-४-४७)	२
५	शेषाद्वा (सि०७-३-१७५)	९, १४

॥अथा-ऽष्टमं परिशिष्टम्॥

न्यायाः

अकारादिक्रमेण भवस्थितिग्रन्थवृत्तिगतानां न्यायानां सूचिः—

अनु०	न्यायाः	पृष्ठाङ्काः
१	अन्त्यदीपकः—१८	
२	अर्थवशाद्वचनपरिणामः	५,१०
३	द्वन्द्वादौ श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते—	४,६
४	देवो देवदत्तः-	९,
५	यथोद्देशं निर्देशः—३,	
६	व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिः-	९
७	व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्न हि संदेहादलक्षणता-	२६
८	समुदायेषु प्रवृत्ताः शब्दा अवयवेष्वपि व्यवह्रियन्ते—	२६
९	सिंहावलोकनम्—	१८

अथ नवमं भवस्थित्युपयोगिन्यः ५ मूलमार्गणाः

१ गतिः ४७ — २ इन्द्रियम् १९ — ३ कायः ४२

गतिः

१ नरकगतिः ८
- १ नरकगतिसामान्यम्
- ७ प्रथमादिसप्तनरकाः

२ तिर्यग्गतिः ५
- १ तिर्यग्गतिसामान्यम्
- २ पञ्चेन्द्रियतिर्यक्सामान्यम्
- ३ तिरश्ची
- ४ पर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यक्
- ५ अपर्याप्तपञ्चेन्द्रियतिर्यक्

३ मनुष्यगतिः ४
- १ मनुष्यगतिसामान्यम्
- २ मानुषी
- ३ पर्याप्तमनुष्यः
- ४ अपर्याप्तमनुष्यः

इन्द्रियम्

१ एकेन्द्रियः ७ — २ द्वीन्द्रियः ३ — ३ त्रीन्द्रियः ३ — ४ चतुरिन्द्रियः ३ — ५ पञ्चेन्द्रियः ३

(द्वीन्द्रियादयः) १ सामान्यम् २ पर्याप्तः ३ अपर्याप्तः

कायः

१ पृथ्वीकायः ७ — २ अप्कायः ७

(एकेन्द्रिय-पृथ्वीकाय-अप्कायाः)

१ सामान्यम् २ सूक्ष्मसामान्यम् ३ पर्याप्तसूक्ष्मः ४ अपर्याप्तसूक्ष्मः

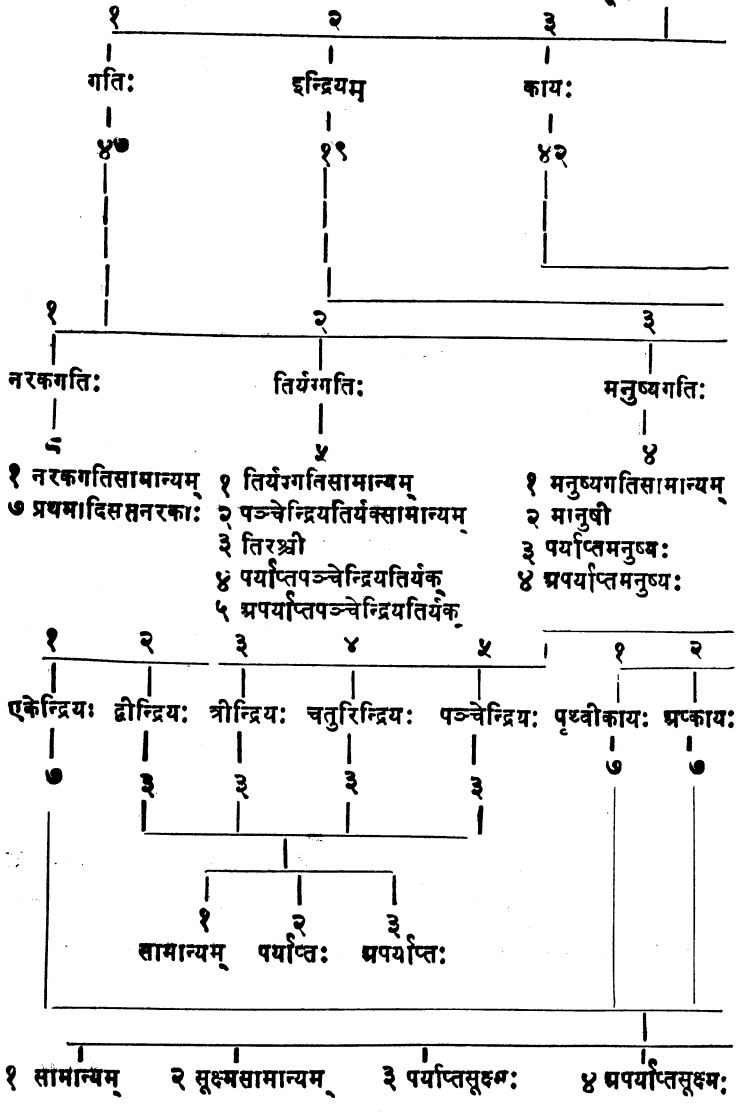

परिशिष्टम्

(गाथा १) तेषामुत्तर ११७ मार्गणाप्रदर्शियन्त्रम्

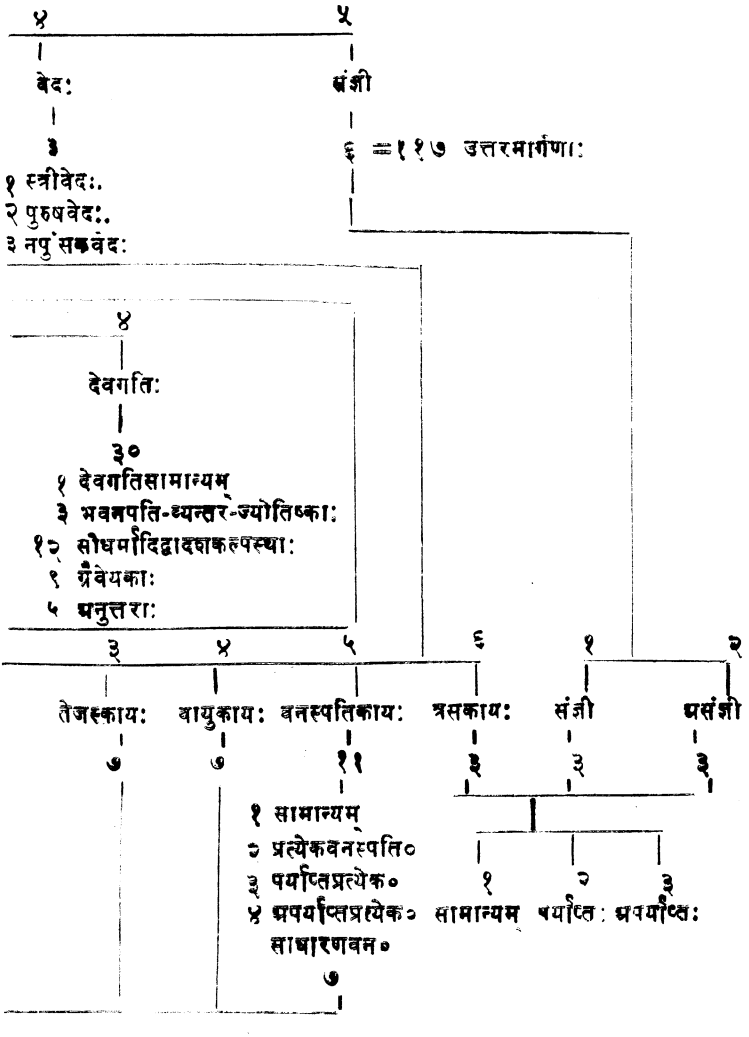

अथ दशमं परिशिष्टम्

उत्कृष्ट-जघन्यभवस्थितिप्रमाणप्रदर्शियन्त्रम् । (गा. २-१५)

ओघत उत्कृष्टभवस्थितिः ३३ सागरोपमाणि, जघन्यभवस्थितिः क्षुल्लकभवप्रमाणा-ऽस्ति । (गा. २)

उत्कृष्टप्रमाणम्	गतिः	इन्द्रियम्	कायः	वेदः	संज्ञी	सर्वा:	गाथाङ्का:
३३ सागरोपमाः	नरकोघ., सप्तमनरक. सुरोघ०, पञ्चानुत्तर० ८	पञ्चे०, प० पञ्चे० २	त्रस० प० त्रस० २	पु० नपु०. २	संज्ञि० २ प. संज्ञि०	१६	७२-३
१,३,७,१०,१७,२२सा.	क्रमशः प्रथमादि६नरक. ६					६	३
३ पल्योपमानि	अपर्या. विना तिर्य० ४ ,, ,, मनु० ३ ७					७	४
साधिकसागरोपमः	भवनपतिसुर. १					१	५
पल्योपमम्	व्यन्तरसुर० १					१	५
सा. ,,	ज्योतिष्कसुर० १					१	५
२ सागरोपमे	सौधर्मसुर० १					१	६
सा. २ ,,	ईशानसुर० १					१	६
७ सागरोपमाः	सनत्कुमारसुर० १					१	६
सा. ७ ,,	माहेन्द्रसुर० १					१	६
१० ,,	ब्रह्मसुर० १					१	६
१४ ,,	लान्तकसुर० १					१	६
१७ तः ३३ ,,	महाशुक्रसुरादयः १५					१५	६-७
२२००० वर्षाणि		एके., बा.ए., प.बा.ए. ३	पृ., बा.पृ., प.बा.पृ. ३			६	८
१२ ,,		द्वीन्द्रिय, प.द्वीन्द्रिय. २				२	९

४६ दिवसाः		त्रीन्द्रिय.प.त्रीन्द्रिय.२				२	९
६ मासाः		चतुरिन्द्रिय.,प.चतु.२				२	९
७००० वर्षाणि			अप्.,बा.अप्.प.बा.अप्.३			३	१०
३००० ,,			वायु.,बा.वा.,प.बा.वा.३			३	१०
३ दिवसाः			तेज.,बा.ते.,प.बा.ते.३			३	१०
१०००० वर्षाणि			वन., प्रत्ये.,प. प्रत्ये. ३			३	११
५५ पल्योपमानि				स्त्री.१		१	११
पूर्वकोटिवर्षाणि					अ,प.अ.२	२	४
अन्तर्मुहूर्तम्	अप.पञ्चे.ति.,अप.मनु.२	शेष० ८	शेष० २५		शेष० ४	३७	११
जघन्यप्रमाणम् १०००० वर्षाणि	नरक०,प्र०नरक० सुर०भवन०व्यन्तर० ५					५	१२
१,३,७,१०,१७,२२ सा	द्वितीयादि६नरक० ६					६	१२
१/८ पल्योपमम्	ज्योतिष्कसुर० १					१	१३
१ पल्योपमम्	सौधर्मसुर० १					१	१३
सा. १ ,,	ईशानसुर० १					१	१३
२ सागरोपमे	सनत्कुमारसुर० १					१	१४
सा. २ ,,	माहेन्द्रसुर० १					१	१४
७ सागरोपमाः	ब्रह्मसुर० १					१	१४
ब्रह्मसुराद्युत्कृष्टभवस्थितिः क्रमशः	लान्तकसुरादयः अनुत्तरसुरान्ताः २०					२०	१५
नास्ति	सर्वार्थसिद्धसुर० १					१	१५
अन्तर्मुहूर्तम्	पर्या० २,योनि० २ ४	पर्याप्त० ६	पर्याप्त० १२	पुं.स्त्री	पर्या० २	२६	१५
क्षुल्लकभवः	शेष०	शेष० १३	शेष० ३०	नं.पु१	शेष० ४	५३	१५

इति

मुनिश्रीवीरशेखरविजयप्रणीता

स्वोपज्ञ-

प्रेमप्रभावृत्तिपरिकलिता

भवस्थितिः

दशपरिशिष्टपरिवृता

समाप्ता